श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयतेतराम्

देवरहा प्रसाद

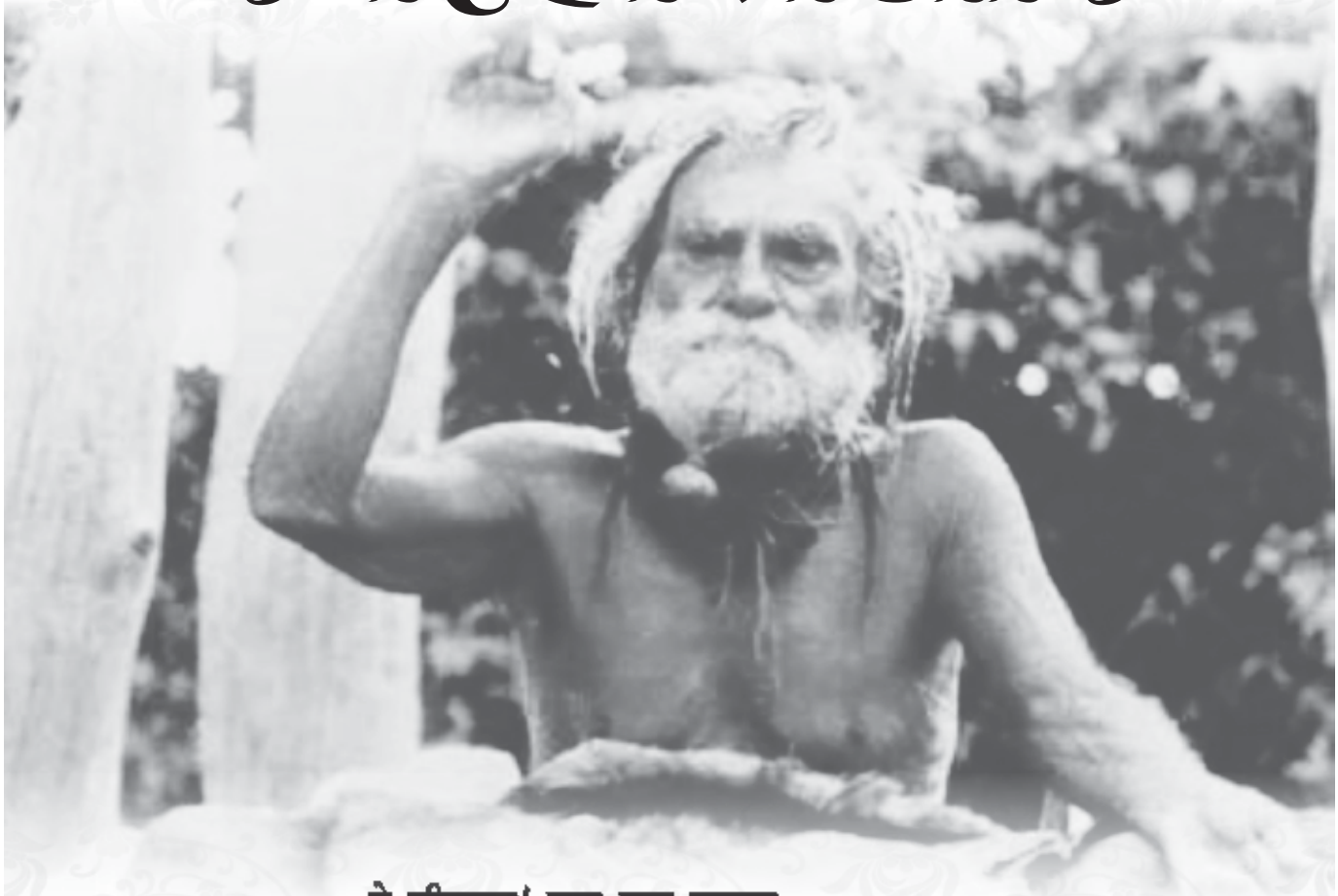

हे वीतराग! शत्-शत् प्रणाम,
हे योगिराज! शत्-शत् प्रणाम।
हे ब्रह्मनिष्ठ! शत्-शत् प्रणाम,
हे देवराह! शत्-शत् प्रणाम॥

श्रीमद् चरणकिङ्कर
—'राम दास'

• प्रकाशक/स्वामी/मुद्रक •

राम दास

• संस्करण •

सितम्बर–चतुर्थ-2020

• सहयोग राशि •

50/- (पचास रुपये मात्र)

• संरक्षक •

कुँवर श्री रघुराज प्रताप सिंह

• सम्पादक •

राम दास

• संशोधक •

डॉ. अरुण कुमार त्रिपाठी

• परामर्शदात्री समिति •

आचार्य सियाराम शास्त्री, श्री फूलचन्द्र दुबे, श्री मनोज मित्तल,
श्री विजय कुमार, डॉ. हरेन्द्र मिश्र

• मुद्रण •

दि इलाहाबाद ब्लॉक वर्क्स प्रा. लि.
329/255 चक, जीरो रोड, प्रयागराज
दूरभाष– 0532-2564543

• सर्वाधिकार सुरक्षित–राम दास

संपादन—संचालन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक राम दास की ओर से ''दि इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स प्रा. लि. 329/255 चक जीरो रोड, प्रयागराज–211003'' उत्तर प्रदेश द्वारा मुद्रित एवं श्री देवरहा बाबा मंच न्यास कोहना, झूंसी–211019 उत्तर प्रदेश, प्रयागराज से प्रकाशित

सम्पर्क सूत्र

श्री देवरहा बाबा मंच

शास्त्री पुल के नीचे, झूँसी, गंगा तट, प्रयागराज
पिन कोड — **211019**
E-mail : sridevrahababamanch@gmail.com

सुधीजन हमें अपने लेख उक्त ई-मेल के पते पर भेज सकते हैं।
website : devrahababamanch.org

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय 4

ब्रह्मर्षि योगिराज देवरहा स्तुति शतकम्..... 5

बिनु सत्संग न हरि कथा 6

मुक्ति के चार साधन..... 8

धर्मोरक्षति रक्षितः..... 10

अधिमास-कारण एवं महत्व 13

क्या मेरी अगली पीढ़ी अपंग पैदा होगी? 17

सहस्त्रगीति का अध्ययन करते समय श्रीयामुनाचार्य जी को श्रीरामनुजाचार्य का ध्यान आना..... 22

अन्येषां पुराणागमादीनां प्रामण्यव्यवस्था..... 23

मानस की मन्दोदरी..... 25

रामचरितमानस में अहंकार का नाशक रामकथा 29

सम्पादकीय

प्राणियों में दुर्लभ मानव जीवन तो प्राप्त हो गया परन्तु लक्ष्य स्पष्ट नहीं होने के कारण समस्यायें उलझती जाती हैं। हम जैसा चाहते हैं, वैसा नहीं होता। जीवन में शांति नहीं मिलती। धन, दौलत, परिवार सब कुछ होने पर भी मन अशांत रहता है। बाबा कहते थे कि यह शांति केवल सीताराम के नाम में ही मिलती है। इसीलिए ''प्यारे आत्मा राम को भजो राम को इष्ट मानो जो अनिष्ट को नष्ट करे, वही इष्ट है। राम का नाम जपते-जपते सो जाओ। शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गंध से बचो।''

बाबा ने जो भविष्य वाणी की थी आज भी सत्य हो गई है। वे कहा करते थे कि बच्चा, ''अयोध्या किसकी है? राम की न, तो फिर राम की जन्मभूमि पर उनका मंदिर बनकर रहेगा।'' बाबा मन्दिर निर्माण के आधार स्तंभ थे। पूज्य बाबा राम और कृष्ण की भक्ति, उनके अनुकरण से कल्याण की कामना किया करते थे।

पूज्य बाबा जैसे योगी संत महापुरुष के सानिध्य से ही अन्य आत्मायें भी प्रकाशित हो जाती हैं। संत महापुरुष जगत की मोहमयी रात्रि में तारा के समान है। संतों के सानिध्य से तथा उनके प्रकाश चिंतन मनन से मोह ग्रसित प्राणी जाग जाता हैं जीवन में कल्याण के लिए संतों का सत्संग आवश्यक है। संतों की संगति के बिना मोक्ष भी सम्भव नहीं है। पूज्य बाबा की कृपा भक्तों पर निरंतर बरसती रहती है।

आज बीमारियों से बचने के लिए योग का प्रयोग किया जा रहा है। योगाभ्यास के द्वारा लौकिक जगत में स्वास्थ्य लाभ हो सकता है, परन्तु योग के द्वारा आध्यात्मिक लाभ विरले को ही प्राप्त होता है। योग के द्वारा आध्यात्मिक लाभ आंशिक रूप से भी प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति शिवत्व को प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि पूज्य बाबा साक्षात् शिव के अंश के रूप में प्रतीत होते थे। पूज्य बाबा के जीवन-दर्शन का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने योग का समन्वय लौकिक एवं पारलौकिक दोनों दृष्टियों को समाहित कर लोककल्याण के लिये किया है। उनका मानना था कि राम नाम का निरन्तर जप, गो सेवा, आचार-विचार तथा व्यवहार का निरन्तरत्व ये सभी योग के अंग है। ऐसे योगी सम्राट बाबा जी जो अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने वाले हैं, उनको शत-शत नमन है।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

देवरहा प्रसाद का यह चतुर्थ अंक कोविड के कारण आप लोगों की सेवा में कुछ विलम्ब से पहुँच रहा है। आप सभी सुधी पाठक जनों से निवेदन है कि बाबा के उपदेशों का पालन करते हुए प्रभु श्री राम का स्मरण एवं जप करते रहें। आप सभी स्वस्थ्य एवं प्रसन्न रहें। यही मेरी बाबा से प्रार्थना है।

चरण किंकर
रामदास

ब्रह्मर्षि योगिराज देवरहा स्तुति शतकम्

गत अङ्क से आगे...

यथा च मोहग्रस्तपाण्डुनन्दनस्य भूतये,
जगौ जगद्गुरुः सुगीतमद्भुतं हरिः स्वयम्।
तथैव योगिराडयं सुधोपदेशदानतः,
जगन्ति भासयत्यहो गुरुत्वमेव दर्शयन्॥16॥

और जैसे मोह में पड़े हुए अर्जुन के लिए जगद्गुरु भगवान् ने श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश दिया था, वैसे ही श्रीमहाराज का अमृतोपदेश भी इनके जगद्गुरुत्व को प्रकट करता है।

अहो! यदेष दृक्पथं प्रयाति भाग्यशालिनाम्,
कदापि यामुने तटे दिगम्बरो महामुनिः।
विहाय भेददर्शनं समस्तदेशजातिजम्,
स्वकीयमेव दैवतं विभाव्य पूज्यते गुरुः॥17॥

और जब कभी श्रीधाम वृन्दावन में यमुना के किनारे दिगम्बर महामुनि बाबाजी भाग्यशालियों की दृष्टि में आते हैं तो लोग देश, जाति, सम्प्रदाय आदि भावनाओं को छोड़कर, अपने ही देवता समझकर पूजा करने लगते हैं।

स्वयं सुतीर्थसेवनेन तीर्थमेव पावयन्,
जनानपि प्रशिक्षयन्विराजते महामुनिः।
न तीर्थसेवनं मुधा तदा जनैर्हि मन्यते,
वसन्ति तत्र हीदृशाः महायतीश्वरा अपि॥18॥

वस्तुतः तीर्थों में जाने से श्रीमहाराज के द्वारा तीर्थों की ही महिमा बढ़ जाती है। लोग समझते हैं कि तीर्थों में जाना व्यर्थ नहीं है, क्योंकि श्रीमहाराजजी जैसे महामुनि-जन भी तीर्थों में जाते हैं।

सनाथिता भवेदथो तदा निलिम्पनिर्झरी,
यदा प्रयात्ययं हरेः प्रियं हि द्वारमुत्तमम्।
न केवलं जनास्तदा हि जाङ्गलाश्च जन्तवः,
महोत्सवं विधाय यान्ति धन्यतां मुदान्विताः॥19॥

और जब कभी श्रीमहाराज गंगा तट पर हरिद्वार में विराजते हैं, तो न केवल मनुष्य ही अपितु जंगली जानवर भी धन्य हो जाते हैं। ये लोग प्रसन्न होकर उत्सव मनाते हैं।

क्वचित्तदा भ्रमन्वने वनीयशिष्यमण्डलीम्,
तमिस्रव्याघ्र सिंहवन्यदन्तिभिर्दुरासदाम्।
कृपाप्रसादमर्पयन् स्वदर्शनेन पावयन्,
प्रयात्यहो न कस्यचित् सचेतसोऽपि रोचनम्॥20॥

और जब कभी वनों में घूमते हुए ही जंगली शिष्यों की मण्डली को जो कि हिंसक बाघ, सिंह और जंगली हाथियों की ही मण्डली होती है, अपनी कृपा प्रसाद देते हुए तथा अपने दर्शनों से पवित्र करते हुए जब ये मुनिवर विराजते हैं तो ऐसे में वह किस बुद्धिमान् विचारक को भी अति अद्भुत नहीं लगते! अपितु सबके ही प्रीतिजनक हो जाते हैं।

—क्रमशः आगामी अङ्क में...

बिनु सत्संग न हरि कथा

डॉ. रामनरेश त्रिपाठी

सचमुच ईश्वर की लीला अत्यंत रहस्यमई है। इसके रहस्य का पूर्ण उद्‌घाटन न कोई कर सका है न कर सकता है। पृथ्वी के रंगमंच पर वही नटवर अनंत वेश धारण करके अपनी लीला करता है किंतु वह जितना चाहता है उतना ही मनुष्य उसे जान पाता है।

''**सोई जाने जेहि देहु जनाई**'' पूज्य श्री देवरहा बाबा जैसे संत योगी महापुरुष इस समय धरती पर नहीं दिखाई देते उनके विषय में पढ़कर और सुनकर हृदय में अपार श्रद्धा उत्पन्न होती है।

उनके दर्शन तथा सानिध्य से तो हृदय में व्याकुलता उत्पन्न होती है कि आखिरकार प्रभु की अहैतुकी कृपा है कि सन् 1972 से लेकर उनके ब्रह्मलीन होने तक मैं उन के सानिध्य में रहा। यह परमात्मा की असीम कृपा है और प्रभु का मंगलमय विधान है। फलतः उनकी दिव्य वाणी से जो कुछ प्राप्त कर सका वही मेरे जीवन में मेरे लिए प्रेरणा का स्रोत रहा बाबा का पूर्व शरीर अब हमारे बीच में नहीं है परन्तु आज भी यदि आप स्मरण करें तो उनकी साक्षात प्रतिमूर्ति आपके सामने सहसा दिखाई पड़ जाती है और हृदय प्रकाशमय हो जाता है। बाबा जन-जन के उद्धार तथा मानव मात्र के पथ प्रदर्शन के लिए इस पृथ्वी पर प्रकट हुए थे। और अभी भी सूक्ष्म स्वरूप में विद्यमान हैं।

''**बिनु सत्संग विवेक न होई**'' कहकर गोस्वामी तुलसीदास ने संतों के सानिध्य की महिमा गाई है। संत महापुरुष जगत की मोहमयी रात्रि में तारा के समान है। उनके सानिध्य से तथा उनके प्रकाश चिंतन मनन से मोह ग्रसित प्राणी सचेत हो जाते है। सत्संग से विवेक होने का तात्पर्य जीवन की मौत यात्रा में ज्ञान प्रकाश का उदय होना है। संत के सानिध्य से ही अन्य आत्माऐं प्रकाशित होने में सक्षम है। जीवन में कल्याण के लिए सत्संग की आवश्यकता है। सत्संग से विवेक प्राप्त होता है। ऐसा गोस्वामी तुलसीदास का कहना है। सत्संग अथवा कथा से उत्पन्न विवेक शब्द का गूढ रहस्य गंभीर है। शरीर तथा आत्मा का ज्ञान और जगत एवं जगत आत्मा का ज्ञान होना विवेक है। मोह से ग्रसित जो प्राणी मोह जाल से छूटने का प्रयास नहीं करता, ऐसे प्राणी को शास्त्र की भाषा में वन्यजीव कहा जाता है। जो आत्मा परमात्मा तथा उपलब्ध मानव जीवन के गूढ़ रहस्य को सुलझाने की चेष्टा नहीं करते, संतों ने ऐसे जीवों को मृतक प्राणी की भी संज्ञा दी है। उनके बचनानुसार जीवित प्राणी वही है जो भगवत्प्राप्ति के लिए क्रियाशील हैं इन प्रश्नों को लक्ष्य कर ही महाभारत वन पर्व में महात्मा युधिष्ठि ने यक्ष से कहा था ''प्रतिदिन प्राणी मृत्यु को प्राप्त कर यमराज के घर जाता है और यह सभी भली-भाँति जानते हैं, फिर भी उसकी जीने की अभिलाषा बनी रहती है।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यम मन्दिरं... प्राणी जन्म मरण के बंधन पर कभी कोई विचार नहीं करते। वे इस बंधन से मुक्त होने के लिए सत्संग द्वारा विवेक प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करते। वे संत महात्माओं की वाणी नहीं समझ पाते। ऐसे ही प्राणियों को देखकर महात्मा युधिष्ठिर के मन में चिंता हुई थी और उन्होंने महाभारत में अपने सारगर्भित विचार व्यक्त किए थे। योगेश्वर श्री देवरहा बाबा को नित्य मुक्त कहा गया है। इच्छा अनुसार उनका जन्म मरण होता है वे पृथ्वी पर मानव मात्र के कल्याण तथा उद्धार के लिए हैं, उनका कोई निजी संकल्प विकल्प नहीं हैं। ऐसे संत महापुरुषों को पूर्णतः जानना कठिन है कोई गुरु ही अथवा स्वयं वह जिसको ज्ञान कराते हैं। वही भाग्यशाली हैं जो उन्हें कुछ जान सकते हैं। उनकी कृपा से ही इस भव बंधन को समझ कर इसके बंधन से छुटकारा

पाया जा सकता है उनका दर्शन सानिध्य और उनके उपदेश के अनुसार आचरण जीवन से मुक्ति के अमोघ साधन बताये गए हैं। नारद भक्ति सूत्र में कहा गया है कि महापुरुषों का संग दुर्लभ है और अब तो ऐसे विरले महात्माओं का मिलना अत्यंत कठिन है और ये भगवत् कृपा से मिल भी जाए तो उन्हें सम्यक् रूप से पहचानना कठिन है किन्तु यदि महापुरुषों का सानिध्य प्राप्त हो जाता है तो फिर यह मिलन कभी व्यर्थ नहीं जाता अमोघ फलदाई होता है। देवर्षि नारद ने आगे के सूत्रों में यह भी कहा है कि उस भगवान की कृपा से ही महापुरुषों का संग मिलता है क्योंकि भगवान में और उन में भेद का भाव नहीं होता है। विभीषण जब श्री हनुमान जी मिले तो उन्हें इसमें भगवत कृपा का ही अनुभव हुआ और उन्होंने कहा कि **''अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहीं संता।।''** कहा गया है कि भगवत् भक्त भी भगवत स्वरूप ही हो जाते हैं। भगवान ने श्रीमद्भगवत में कहा है ''साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ वह मेरे सिवा अन्य किसी को नहीं जानते और मैं उनको छोड़कर और किसी को नहीं जानता। भरत जी श्री राम को भजते हैं और श्री राम भरत को—

भरत सरिस को रामसनेही। जग जपु राम राम जप जेंही।।

भगवान ने गीता में भी कहा है ''यद्यपि मैं सब में समभाव से व्याप्त हूँ ना कोई मेरा प्रिय है और न अप्रिय है परंतु जो भक्त मुझे प्रेम से भजते हैं वह मेरे में और मैं भी उन्हें प्रत्यक्ष प्रगट हूँ। इसलिए देवर्षि नारद ने बार-बार कहा है कि महा सत्संग की ही साधना करो उसी की साधना करो जो विश्व वंद्य है। योगीराज श्री देवरहा बाबा के दर्शन सानिध्य से बढ़कर महा सत्संग आज के युग में भला दूसरा क्या होगा महाराज श्री के प्रत्येक वाक्य महामंत्र है तथा वे वेद पुरान निगम के स्वरूप थे। उनके श्री चरणों के निकट आकर मैं स्वयं धन्य-धन्य हो गया। तुलसीदास जी कहते हैं—

बार-बार वर माँगऊँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायिनी भक्ति सदा सत्संग।।

समग्र शास्त्र बाबा की जिह्वा पर था। हजारों भक्त प्रतिदिन उनकी दिव्य वाणी को सुनने के लिए व्याकुल रहते थे। मंच के पास जो आता उनकी अमृतमयी वाणी को सुनकर धन्य हो जाता।

सर्वे भवन्तु सुखिनःसर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मां कश्चिद् दुःख आग भवेत्।।

परम आराध्य श्री बाबा के सत्संग से जीवन में जो प्रकाश मिला उसे ठीक ठीक बताना कठिन है। उनकी कृपा भक्तों पर निरंतर बरसती रहती है वह मेरे सतगुरु है, उनके पावन श्री चरणों में शत शत शत नमन अर्पित करता हूँ।

प्रयागराज
9415235128

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निस्संदेह कुछ भी नहीं है। **—श्रीमद्भगवद्गीता—4/38**

मुक्ति के चार साधन

वीरेन्द्र कुमार

गीता के अंतिम अध्याय का नाम है—मोक्ष सन्यास योग। भारतीय चिंतन में मानव जीवन का परम उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना अथवा आवागमन के चक्र से मुक्ति माना गया है। मोक्ष का अर्थ है सभी प्रकार के सांसारिक बंधनों से मुक्ति। बंधन वे जो मनुष्य को संसार से बांध कर रखते हैं, जो सांसारिक सुखों और सुविधाओं के प्रति आसक्ति पैदा करते हैं। इसमें जीवन 'मैं और 'मेरा' तक सीमित हो जाता है। इस आसक्ति के कारण हम अनेक तरह की चिंता, दुःख, अशांति, अभाव, निराशा, हताशा, जीवन के प्रति अवसाद और उदासीनता से घिरे रहते हैं। ये दुःख और चिंता जीवन-पर्यन्त चलती रहती हैं। इन से मुक्ति का एक मात्र साधन है ज्ञान की प्राप्ति अथवा विवेकशीलता क्योंकि इन बंधनों का मूल कारण है अज्ञान। मुक्ति अथवा मोक्ष की प्राप्ति के लिए भगवान ने श्रीमद्भगवद् गीता में निम्नलिखित निर्देश किया है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहम् त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

यहाँ धर्म से तात्पर्य किसी प्रकार की संकीर्णता से नहीं हैं। सीधे शब्दों में इस का अर्थ कहा जाये तो—

'तू सब ग्रंथियों, उलझनों शंकाओं आदि को छोड़ कर मेरी शरण में आजा। यदि तुझे कोई पाप आदि का भय लगता है तो उस का उत्तरदायित्व मैं लेता हूँ।

भगवान ने सूत्र रूप में मुक्ति का मार्ग दिखा दिया। किंतु किस प्रकार मनुष्य का मन सारे सांसारिक विषयों को छोड़ दे, इसके लिए कौन से साधन अपनाए जाएँ। इसका समाधान करते हुए आचार्य शंकर ने विवेकचुडामणि में लिखा है—

आदौ नित्यानित्यवस्तुविवेकः परिगम्यते।
इहामुत्रफलभोगविरागस्तदनन्तरम्
शमादिषट्कसम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम्।।

सबसे पहले नित्य और अनित्य वस्तुओं के बीच का भेद अर्थात् विवेक, इसके बाद कर्मों के फलों के भोग से विराग, फिर, शमादि छः गुण और अंत में केवल मोक्ष प्राप्ति की कामना—यह साधन चतुष्टय की व्याख्या है, अर्थात् इन चार साधनों से मुक्ति पायी जा सकती है। इन सबमें सबसे पहला है—विवेक।

विवेक क्या है? विवेक की परिभाषा करते हुए कहा गया है—नीर-क्षीर विवेक अर्थात् जिस प्रकार एक हंस दूध में पानी की मिलावट पहचान लेता है, उसी प्रकार विवेकशील मनुष्य संसार में नित्य और अनित्य वस्तुओं के बीच का अंतर पहचान लेता है। उसे इस बात का बोध होता है कि केवल ब्रह्म तत्त्व ही नित्य है और यह सम्पूर्ण संसार अनित्य है तथा अज्ञान के ही कारण संसार में मनुष्य स्वयं को ''अस्तित्वशाली'' अर्थात् 'मैं'' मानता है—

अज्ञानयोगात्परमात्मनस्तव ह्यनात्मबन्धस्तत एवं संसृतिः।
तयोर्विवेकोदितबोधवन्हिः अज्ञानकार्यं प्रदहेत्समूलम्।।

जब मनुष्य के विवेक का उदय हो जाता है तो वह यह जान जाता है कि जन्म और मृत्यु के चक्र से जीव को स्वयं ही गुजरना पड़ेगा इसलिए सांसारिक विषयों से उसे विराग हो जाता है। अब सवाल यह उठता है कि यह विवेक और उससे उत्पन्न होने वाला विराग कैसे हों? मनुष्य इन साधनों को प्राप्त कैसे करे? इसका समाधान करते हुए आचार्य शंकर कहते हैं कि जिस प्रकार एक रोगी को स्वस्थ होने के लिए स्वयं ही दवा खानी पड़ती है उसी प्रकार मनुष्य स्वयं ही अपने अंदर का विवेक जगा सकता है। अंतःकरण का विवेक जगाने के लिए स्वयं का अनवरत प्रयास ही जरूरी है। तुलसीदास ने कहा है कि अंतःकरण के विवेक की जागृति प्रभु की इच्छा से ही होती है—

बिनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ ना सोई॥

विवेक जाग्रत होने के पश्चात् मनुष्य सांसारिक वस्तुओं के भोग से स्वयं धीरे-धीरे विरक्त हो जाता है। विराग दूसरा साधन है। वैरागी को सारे सुख त्याग देने की इच्छा होती है ताकि ब्रह्मतत्त्व पा सके।

तद्वैराग्यं जिहासा या दर्शनश्रवणादिभिः।
देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि॥

वैरागी मनुष्य तीसरे साधन तक पहुँच सकता है— तीसरे साधन में छः गुणों का विकास होता है—

शम—चित्त को नियंत्रित कर उसे सांसारिक विषयों से खींचना और ईशचिंतन में लगाना। विवेक और वैराग्य के उदय के पश्चात् ही चित्त के शमन की यह शक्ति प्राप्त हो पाती है।

दम—इंद्रियों को वाह्य जगत से खींच कर आत्मतत्त्व की ओर ले आना।

उपरति—फलप्राप्ति की इच्छा से कर्म ना करना।

तितीक्षा—इसका अर्थ है सहन करना- सभी दुःखों को, वह भी बिना किसी शोक तथा चिंता के—

सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम्।
चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते॥

श्रद्धा—शास्त्र वचन और गुरु वचन को सत्य मानकर उसपर विश्वास रखना।

समाधान—बुद्धि का निर्विकार ब्रह्म में सर्वदा तल्लीन रहना, ना कि कभी-कभार मनोविनोद के लिए।

सबसे अंत में आता है मुमुक्षुत्व अर्थात् मोक्ष प्राप्ति की उत्कट इच्छा। अज्ञान से बंधन और अहँभाव पैदा होता है जबकि ज्ञान से यह इच्छा उत्पन्न होती है जिसे मुमुक्षुत्व कहते हैं—बंधनों से मुक्त होने की आखिरी लालसा। यह लालसा ही जीव को ब्रह्म तक ले जाती है।

हनुमान नगर, पटना

द्रष्टा दृश्यबलाद्बन्दो दृश्याभावे विमुच्येत्।

द्रष्टा की दृश्य के साथ एकता मान लेना ही बंधन है।

—योगवासिष्ठ

धर्मोरक्षति रक्षितः

विजय कुमार IRTS

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यः मानो धर्मोहतोवाधीत्॥

अर्थात् धर्म का लोप कर देने से वह लोप करने वालों का नाश कर देता है, और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है। इसलिए धर्म का हनन कभी नहीं करना चाहिए, जिससे नष्ट धर्म कहीं हमको न समाप्त कर दे।

यह समझने के लिए हमें सबसे पहले यह समझना होगा कि धर्म क्या है?

वैदिक सनातन व्यवस्था में 'धर्म' शब्द 'ऋत' पर आधारित है। 'ऋत' वैदिक धर्म में सही सनातन प्राकृतिक व्यवस्था और संतुलन के सिद्धान्त को कहते हैं, यानि वह तत्त्व जो पूरे संसार और ब्रह्माण्ड को धार्मिक स्थिति में रखे या लाए। वैदिक संस्कृत में इसका अर्थ 'ठीक से जुड़ा हुआ, सत्य, सही या सुव्यवस्थित' होता है।

ऋग्वेद के अनुसार-''ऋतस्य यथा प्रेत'' अर्थात् प्राकृत नियमों के अनुसार जिओ।

लेकिन इस सूत्र का मात्र इतना ही अर्थ नहीं है कि प्राकृत नियमों के अनुसार जीओ। सच तो ये है कि ऋत शब्द के लिए हिन्दी में अनुवादित करने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए इसको समझना ज्यादा जरूरी है, क्योंकि यह शब्द अपने आप में बहुत ही विराट है। 'प्राकृत' शब्द से भूल हो सकती है। निश्चित ही वह एक आयाम है ऋत का, लेकिन बस एक आयाम! जबकि ऋत बहुआयामी है।

ऋत का अर्थ है-जो सहज है, स्वाभाविक है, जिसे आरोपित नहीं किया गया है। जो अंतस है आपका, आचरण नहीं। जो आपकी प्रज्ञा का प्रकाश है, चरित्र की व्यवस्था नहीं जिसके आधार से सब चल रहा है, सब ठहरा है, जिसके कारण अराजकता नहीं है। बसंत आता है और फूल खिलते हैं। पतझड़ आता है और पत्ते गिर जाते हैं। वह अदृश्य नियम, जो बसंत को लाता है और पतझड़ को भी। सूरज है, चाँद है, तारे हैं। यह विराट विश्व है और कही कोई अराजकता नहीं। सब सुसंबद्ध है। सब एक तारतम्य में है। सब संगीतपूर्ण है। इस लयबद्धता का ही नाम ऋत है।

यहाँ एक और शब्द आया है, सनातन।

अब तक आपने जहाँ भी पढ़ा होगा उसके अनुसार 'सनातन' का अर्थ है-शाश्वत या 'हमेशा बना रहने वाला', अर्थात् जिसका न आदि है न अन्त। शायद यही सबसे बड़ी भूल हुई जो आज बड़े धर्म के जानकार भी बड़े गर्व से कहते हैं कि सनातन धर्म कभी नष्ट नहीं हो सकता, चिरकाल से चलता आ रहा है और चिरकाल तक चलता रहेगा जबकि वैदिक सनातन धर्म की आज की स्थिति तो आपके सामने है या यूँ कहें कि आज भी वैदिक सनातन धर्म आपको शायद ही कहीं दिखे ।

धर्म, जिसे लोग समुचित जानकारी के अभाव में अपनी-अपनी परिभाषाएं देकर समझने-समझाने का प्रयास-दुष्प्रयास करते हैं, वास्तव में अत्यंत व्यापक और विशाल अर्थ को अपने आप में समेटे हुए हैं। धर्म ही इस चराचर जगत एवं सम्पूर्ण जीवों के जीवन का मूल है। धर्म के बिना न इस सृष्टि की कल्पना की जा सकती है और न ही मानव जीवन की। धर्म के बिना ये विश्व श्रीहीन हो जायेगा।

धर्म के बारे में लोगों ने कई तरह की भ्रांतियाँ पाल रखी हैं और दूसरों को भी उसी हिसाब से दिग्भ्रमित करने में लगे रहते हैं। अतः धर्म को सही प्रकार से समझना सर्वप्रथम अतिआवश्यक है। तो चलिए सबसे पहले जानते हैं कि धर्म क्या है। हिन्दू धर्म के अनुसार-

(1) परोपकार पुण्य है दूसरों को कष्ट देना पाप है

(2) स्त्री आदरणीय है

(3) पर्यावरण की रक्षा हमारी उच्च प्राथमिकता है

(4) हिन्दू दृष्टि समतावादी एवं समन्वयवादी है

(5) जीवमात्र की सेवा ही परमात्मा की सेवा है

धर्म एक आधार है जिस पर मनुष्य के नैतिक एवं मानवीय गुण यथा दया, क्षमा, तप, त्याग, मनोबल, सत्यनिष्ठा, सुबुद्धि, शील, पराक्रम, नम्रता, कर्त्तव्यनिष्ठा, मर्यादा, सेवा नैतिकता, विवेक, धैर्य इत्यादि पनपते हैं। धर्म की छत्रछाया में इन गुणों का सर्वागीण विकास होता है। मनुष्य सिर्फ अपनी मानवाकृति के कारण मनुष्य नहीं कहलाता बल्कि अपने उपरोक्त गुणों से वास्तविक मनुष्य बनता है। मनुष्यों और पशुओं में अंतर शारीरिक नहीं है बल्कि पशुओं में ऊपर बताये गये मौलिक मानवीय गुणों में से कुछ का अभाव होता है। हाँ यहाँ ये भी कह देना आवश्यक है कि पशुओं में कुछ वो गुण जरूर होते हैं जो आजकल के मनुष्यों में नहीं होते।

मौलिक मानवीय गुणों का सिर्फ होना ही आवश्यक नहीं है बल्कि उनकी निरंतर रक्षा भी होनी चाहिए। ये कार्य भी धर्म के सुरक्षा आवरण लेकर ही हो सकता है क्योंकि अनेक अवसरों पर ये देखा गया है कि परिस्थितियां विपरीत होने पर मनुष्य में मानवता का उत्तरोत्तर ह्रास होने लगता है। ऐसा क्यों होता है क्योंकि मनुष्य में धैर्य का अभाव होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर नामक षट्रिपुओं के अधीन मानव केवल स्वयं के बारे में सोचना शुरू कर देता है। खुद को सर्वश्रेष्ठ समझने का दर्प, ऊँचाई पर पहुँचने की तीव्र इच्छा मानव को दानव बना देती है। किसी से छीनी हुई वस्तु उसे लज्जित नहीं वरन् गौरवान्वित करती है। किसी के आंसुओं का उसके लिए कोई मोल नहीं रह जाता। दया, व्यावसायिकता की आंधी में उड़ जाती है। किसी भी चीज को सही-गलत के हिसाब से देखने के बजाये मनुष्य उसे लाभ-हानि के दृष्टिकोण से देखने और समझने लगता है।

आज अगर कठोरतम कानूनों के बावजूद बलात्कार, लूटमार और घरेलू हिंसा के मामले बढ़ रहे हैं तो क्यों? क्यों आज भाई-बहन का पवित्र रिश्ता दागदार हो रहा है? आखिर क्यों चाचा, मामा, ताऊ यहाँ तक की पिता के द्वारा भी बच्चियों के शोषण के मामले सामने आ रहे हैं? क्यों आज गुरू-शिष्या का रिस्ता भी निष्कलंक नहीं रहा?। कहने का अभिप्राय सिर्फ इतना है कि आज हमारे समाज में जो भी अपराध हो रहे है, जिनके बारे में चिल्लाते-चिल्लाते कई लोगों का गला बैठ गया है, उन सबकी एकमात्र वजह धर्म का ह्रास है। कठोर कानून जहाँ मनुष्य को डराता है वहीं धर्म उसे समझाता है। उसे उन मूल्यों से परिचित कराता है जो मानवता के लिए आवश्यक हैं। धर्म को अपनाते ही मनुष्य अपनेआप मानवता को आत्मसात् कर लेता है। उसे तब न किसी कानूनी रोक की जरूरत है न किसी डर की। वह स्वयं भी सुखी रहेगा और जग के कल्याणार्थ सदैव प्रयत्नशील रहेगा। हमेशा प्रसन्न रहेगा और दूसरों को भी प्रसन्न रखेगा और वही सही अर्थों में मनुष्य बन जायेगा।

ये बात सही है कि धर्म के नाम का सहारा ले कर कुछ लोगों ने गलत किया और शायद आज भी कुछ लोग इसी में संलिप्त हैं किन्तु ये बात धर्म के सनातन महत्त्व को कभी भी नकार नहीं सकती। कुछ कुंठाग्रस्त लोग अधर्मियों

के द्वारा किये गए दुष्कर्मों को आगे करके धर्म की महत्ता को झुठलाने का प्रयत्न करते रहते हैं और हर बार मुंह की खाते रहते हैं। उनका ये प्रयास न कभी सफल हुआ है और न कभी होगा। उनकी जिंदगी बीत जाएगी, यही करते हुए। ऐसे लोगों के लिए मेरे मन मे कुछ प्रश्न हैं जिन्हें उनके सामने रखना चाहता हूँ। वे दुनिया की कोई एक चीज ला के दिखाएँ जिसका कुछ स्वार्थी लोगों के द्वारा दुष्प्रयोग न हुआ हो। मैं ही कुछ ऐसी चीजों के नाम बताता हूँ जिनका गलत उपयोग होता है और उन्हें इसका भी त्याग करना चाहिए—

(a) साहित्य जो सबको ज्ञान देने के काम आता है, नक्सली और आतंकवादी, इसका उपयोग नफरत फैलाने के लिए करते है। अतः वो साहित्य भी छोड़ दें।

(b) फिल्मे जो कभी क्रांति लाती थी, आजकल अश्लीलता परोस रहीं है। फिल्मे भी न देखें।

(c) प्रेम के नाम पर बहुत यौन-शोषण हो रहा है अतः प्रेम भी बुरी चीज है।

(d) जिस इंसानियत की वो माला जपते चलते हैं उसके नाम पर कुछ अनाथालय और विधवाश्रम वेश्यावृत्ति को बढ़ावा दे रहे है और सरकार से पैसे भी ऐंठ रहे हैं। आज से इंसानियत का नाम नहीं लेंगे।

मैने ऊपर जिन चीजों का जिक्र किया। वास्तव में उनके नाम पर वो सब चीजें हो रही हैं। क्या हम उन्हें छोड़ सकते है। नहीं, कभी नहीं। और छोड़ना चाहिए भी नहीं। लड़ना किसी भी संरचना में मौजूद बुराई से चाहिए न की उस संरचना से ही।

धर्म मानवता की आत्मा है। यह एक निर्विवाद सत्य है। अतीत में जाकर धर्म की बुराइयाँ ढूँढनेवाले उन्हीं पन्नों को ठीक से देखें, एक बुराई के मुकाबले सौ अच्छाइयाँ दिखेंगी। कुछ गलत हुआ है तो वो धर्म से भटकाव है, धर्म नहीं। वैसी बातों को आप अपने कुतर्को का आधार नहीं बना सकते। जरूरत है अपनी दृष्टि को पूर्वाग्रहों से मुक्त करने की। हठ त्याग के विचार करने की। तभी कोई सही निर्णय हो पायेगा जो सही मायने में समाज और मानवता का भला करेगा।

आत्मानं चेद् विजानीयादयमयस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्।।

पुरुष यदि अपने आप को जान जाए कि मैं सारे दुःखों के संबंध से रहित नित्य, मुक्त, आनंदस्वरूप हूँ तो वह इच्छाएँ करता हुआ, विषय भोगों में आसक्त होकर भला क्यों दुःख से संतप्त होगा? **—बृहदारण्यक उपनिषद्—4।4।12**

अधिमास-कारण एवं महत्व

डॉ. शम्भुनाथ त्रिपाठी ''अंशुल''

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कालगणना विधान में चान्द्रमास एवं सौर मास को आधार माना जाता है। ये सूर्य एवं चन्द्र दिन-रात के कारक भी हैं और स्वामी भी। सूर्य को आधार मानकर की गई गणना सौर एवं चन्द्रमा को आधारमानकर की गई गणना चान्द्र की संज्ञा से अभिहित की जाती है। इसी के माध्यम से सौर मास एवं चान्द्रमास का बोध होता है। वर्ष भर में 12 चान्द्रमास एवं 12 सौरमास होते हैं। चान्द्रमासों की बारह संख्या पूर्ण होने पर चान्द्रवर्ष जो लगभग 354 दिनों का होता है, तथा बारह सौर मासों को मिलाकर अर्थात् 12 संक्रान्तियों के आधार पर सौर वर्ष का अधिग्रहण किया जाता है। इस सौर वर्ष का मान लगभग 365 दिन एवं 6 घण्टे का माना जाता है। इस प्रकार सौर वर्ष तथा चान्द्र वर्ष के मध्य प्रत्येक वर्ष लगभग 11 दिनों का अन्तर हो जाता है। जो तीन वर्ष अर्थात् तीन चान्द्रवर्षों में लगभग एक मास का आधिक्य हो जाता है, अथवा इस अवधि में अधिक मास की आवश्यकता अनुभूत होती है। परिणामतः जिस वर्ष चान्द्र वर्ष के कारण अधिक मास होता है उस चान्द्र वर्ष में दिनों की संख्या 384 हो जाती है। अतएव ऋतुओं एवं संवत्सर को नियंत्रित करने के लिए तथा चान्द्रमासों के अन्तर को दूर करने हेतु वैदिक ऋषियों द्वारा अधिक मास की व्यवस्था की गई है। इस अधिक मास की व्यवस्था क्रम का उल्लेख इस मंत्र द्वारा स्पष्ट हो जाता है—

''वेदमासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदाय उपजायते।''

—ऋग्वेद सं. 1/25/8

अर्थात् वरुण बारहों मासों को तथा उसके समीप उत्पन्न होने वाले तेरहवें मास यानी कि अधिमास को भी जानते हैं।

यजुर्वेद के अन्तर्गत भी इस तेरहवें महीने के लिए संसर्प, मलिम्लुच तथा अहंस्पति मासों के नामों का वर्णन विधानतः किया गया है। जैसे—

संसर्पाय स्वाहा, चन्द्राय स्वाहा, ज्योतिषे स्वाहा, मलिमलुचाय स्वाहा, दिवापतये स्वाहा, अंहस्पतये स्वाहा। आदि॥ यजुर्वेद 22/30॥

ज्योतिष संहिताओं में इस प्रकरण अर्थात् अधिमास के विशद में विषद रूप से उल्लेख सुलभ हैं। इन ग्रन्थों में कहा गया है कि जिस चान्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति न हो वह मास अधिमास या अधिकमास कहा जाता है। इस अधिमास को अधिकमास, मलमास, मलिम्लुच, संसर्पमास, अहंस्पतिमास, असंक्रन्त मास, नपुंसक मास तथा पुरुषोत्तम मास आदि नामों से व्यवहृत किया गया है। काल गणना के अनुसार यह अधिक मास 32 माह 16 दिन एवं 4 घड़ी के अन्तर से आया करता है।

''द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा।
घटिकानां चतुष्केण पतन्ति ह्यधिमासकः॥''

इस मास को मलमास कहने का रहस्य यह है कि चैत्रादि 12 महीनों में वरुण, सूर्य, भानु, तपन, चण्ड, रवि, गमस्ति, अर्यमा, हिरण्यरेता, दिवाकर, मित्र और विष्णु इन 12 सूर्य के नामों से वर्ष के बारहों महीनों की क्रमिक संज्ञा दी गई है, किन्तु अधिक मास इनसे पृथक् होने के कारण यह संज्ञा रहित रह जायेगा चूँकि यह भगवान सूर्य का मास है अतएव इसे मलिम्लुच मास या मलमास कहते हैं। मलिम्लुच-मली सन् म्लेचतीति। म्लुच् गत्याम् + कः। म्लुच् गमने अर्थात् म्लुच्धातु का अर्थ गमन है, इसमें क प्रत्यय होकर मलिम्लुच शब्द बना है। कहा गया है।

तमत्तिक्रम्य तु रविर्यदागच्छेत् कथञ्चने।
आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्रकृत स्मृतः॥''

अर्थात् जब अमावस्या का अतिक्रमण करके सूर्य आगे बढ़ जाते हैं तब दो मास हो जाते हैं, जिनमें प्रथम मास को मलिम्लुच मास तथा दूसरे को प्रकृत (शुद्ध) मास कहते हैं। मलमास अर्थात् मलो मलिनश्चासौ मासः मलमासः अर्थात् जब चान्द्रमास में सूर्य संक्रान्ति का अभाव हो जाता है, तब सूर्य संक्रान्ति दोष से मलिन हो जाता है। अतएव इसे मलमास कहते हैं। ज्योतिः पाराशर के अनुसार—

''अमावस्या परिच्छिन्नं रविसंक्रान्ति वर्जितम्।
मलमासं विजानीयात् गर्हितं सर्व कर्मसु॥''

इस मास को नपुंसक मास भी कहा जाता है, क्योंकि जब तिथि वृद्धि के कारण किसी मास में सूर्य का संक्रमण नहीं होता तब उस काल खण्ड की नपुंसकमास की संज्ञा हो जाती है। जैसे—

''असंक्रान्तो हि यो मासः कदाचित् तिथि वृद्धितः।
कालान्तरात् समायाति स नपुंसक उच्यते॥''

इस मास का एक अन्य नाम पुरुषोत्तम मास भी है। यहाँ पुरुषोत्तम शब्द से उत्तमता अथवा श्रेष्ठता का भाव व्यञ्जित होता है। यहाँ विचार करने पर शंका की स्थिति उत्पन्न होती है कि इसे एक ओर तो मलमास कहा जाता है तो दूसरी ओर पुरुषोत्तम मास भी कहा जाता है। एक से मलिनता का बोध होता है तो दूसरे से उत्तमता का। विवेचन करें तो यह शंका निर्मूल हो जाती है क्योंकि असंक्रान्त सूर्य की मलिनता के कारण इसे मलमास नाम दिया गया है जबकि पुरुषेषु उत्तमः अर्थात् विष्णुः इस व्युत्पत्ति से मासोत्तम भाव व्यक्त होता है। मासों का एक नाम पुरुष भी है। प्रत्येक मास सूर्य के पर्यायों से सम्बोधित होते हैं और ज्योतिष शास्त्र में सूर्य को ही विष्णु कहा गया है।

विष्णु को ही पुरुषोत्तम कहा जाता हैं इस शब्द का प्रयोग अनेक महाकाव्यों अथवा शास्त्रों में यत्र-तत्र सहज सुलभ है। जैसे कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश में इस प्रकार उल्लेख किया है—

''हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतः, महेश्वर त्र्यम्बक एव नापरः''

—रघुवंश 3/49

अर्थात् एक मात्र हरि (विष्णु) ही पुरुषोत्तम हैं और महेश्वर त्र्यम्बक हैं। महाभारत में भी इस शब्द का उद्धरण प्राप्त होता है—

''पुराणात् सदनाच्यापि ततोऽसौ पुरुषोत्तमः।''

(महाभा. 5/70/10)

यहाँ विष्णु को ही पुरुषोत्तम संज्ञा प्रदान की गई है। एक दूसरे व्युत्पत्ति लब्ध भाव में ''पुरुषेषुमध्ये उत्तमः इति पुरुषोत्तमः'' इसे धर्मपुराण भी सहर्ष स्वीकार करता है—

''विशेष समभावस्य पुरुषस्यानघस्य च।
अरिमित्रेष्युदासीने मनो यस्य समंव्रजेत्॥
समो धर्मः समः स्वर्गः समो हि परमं तपः।
यस्यैव मानसं नित्यं स नरः पुरुषोत्तमः॥''

यद्यपि यहाँ तो इस भाव का सम्बन्ध मनुष्य मात्र से है तथापि इसका भाव मास के अर्थ में भी गृहीत किया जा सकता है। यथार्थतः यह ऐसा माह है जिसमें प्रायः सभी मासों के भिन्न चाहे शत्रुमास हो अथवा मित्र सभी से समान भाव रखता है। इसमें प्राणी पाप रहित हो जाते हैं। सभी स्थलों पर धर्म, सुख, और परमतप होने लगता है और सभी भगवान् का स्मरण करते हैं, अतएव मलमास होते हुए भी यह पुरुषोत्तम मास हो जाता है। इस मास का वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण (3/1) में तेरहवें मास अथवा अधिकमास के रूप में किया गया है।

महाभारत के विराट पर्व में अधिक मास विषयक एक रोचक एवं तथ्यपूर्ण प्रसङ्ग आता है, जब पाण्डवों का अज्ञातवास चल रहा था, उस समय विराट के राजभवन में कीचक वध के उपरान्त सन्देह होने पर दुर्योधन, कर्ण शकुनि आदि ने सलाह कर भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य आदि के साथ विराट की गायों का हरण कर लिया था और जब उत्तर कुमार के साथ वृहन्नला रूप में अर्जुन ने समस्त कौरवों को परास्त कर गायों को वापस करा लिया, तब अर्जुन को पहचान कर दुर्योधन ने शर्त के अनुसार पुनः पाण्डवों को बारह वर्ष तक बनवास की बात पर दृढ़ता दिखाई थी। किन्तु काल का विवेचन करते हुए भीष्म पितामह ने निर्णय सुनाया था। भीष्म पितामह ने बताया कि कला काष्ठा मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन तथा सम्वत्सरों का विभाग करता हुआ यह कालचक्र सदैव प्रवर्तित रहता है। ग्रहों, नक्षत्रों तथा कालातिरेक एवं व्यतिक्रम से प्रत्येक पाँचवे वर्ष में दो अधिकमास हो जाते हैं। अतः इन तेरह वर्षों में पाँच अधिक मास व्यतीत हो गये हैं। इस प्रकार पाण्डवों के बनवास के आरम्भ से अब तक तेरह वर्ष से पाँच माह और बारह दिन अधिक हो चुके हैं। उल्लेख मिलता है—

तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात्।
पञ्चमे-पञ्चमे वर्षे द्वौमासावुपजायतः॥
एषामभ्याधिका मासाः पञ्च च द्वादशक्षपाः॥

यहाँ यह सिद्ध होता है कि महाभारत काल में अधिकमास विषयक ज्ञान कितना व्यापक एवं सुस्पष्ट था, यह तथ्य भीष्म पितामह के निराकरण द्वारा अभिव्यक्त होता है।

अधिमास का अपना पृथक् महत्त्व है। इस मास के अन्तर्गत फल-प्राप्ति की कामना से किए जाने वाले सभी अनुष्ठान वर्जित हैं—

''न कुर्यादधिके मासि काम्यं कर्म कदाचन॥''

अतएव फल की आशा से रहित होकर करने योग्य सभी कार्य किये जा सकते है। मुहूर्त चिन्तामणि के अनुसार ज्वरादि प्राणघातक रोगों की निवृत्ति हेतु औषधि सेवन जपादि अनुष्ठान, गुरु, पुष्य, रवि पुष्य तथा सर्वार्थसिद्धि योग, अमृत सिद्धियोग जैसे अलभ्य योगों के प्रयोग, अनावृष्टि के उपचारार्थ वर्षा कराने हेतु पुरश्चरण, वषट्का वर्जित आहुतियों का हवन, ग्रहणसम्बन्धी श्राद्ध, दान और जपादि, पुत्र जन्म के कृत्य मरणादि के श्राद्ध कर्मादि गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन जैसे संस्कार और नियत अवधि में समाप्त होने वाले पूर्वागत प्रयोगादि किये जा सकते हैं। इसके विपरीत कुआँ (कूप), बावडी, तालाब और बाग आदि का आरम्भ अथवा प्रतिष्ठा, किसी भी प्रकार और किसी भी प्रयोजन वाले व्रत का आरम्भ अथवा उद्यापन, नववधू प्रवेश, पृथ्वी स्वर्ण और तुला आदि का महादान, सोम यज्ञ

और अष्टका श्राद्ध, गौदान, आगयण (यज्ञविशेष), नवीन अन्न से किए जाने वाले यज्ञ, (ये वर्षा ऋतु में साँवा से शरद् ऋतु में चावलों से और बसन्त ऋतु में जौ से किया जाता है) वेदाध्ययन का आरम्भ, अतिपन्न अर्थात् बालकों के नियत काल में न किये हुए संस्कार, देव प्रतिष्ठा, मन्त्रदीक्षा, गुरुसुश्रुषा, यज्ञों पवीत संस्कार, विवाह, मुण्डन, नवीन देव अथवा तीर्थ का दर्शन, सन्यास ग्रहण, अग्नि परिग्रह राजा के दर्शन, अभिषेक, चातुर्मासीय व्रतों का आद्यारम्भ तथा कर्णवेधादि सभी कृत्य अधिमास में निषेध कहे गये हैं।

उक्त अधिमास में 33 देवताओं के नामों का विशेष उल्लेख करते हुए इनके महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। कहा जाता है। कि ये तैतीस देवता तैतीस करोड़ देवाओं के प्रतिनिधि स्वरूप है; अर्थात् इनमें एक देवता एक करोड़ देवताओं का प्रतिनिधित्व करता है। अतः इस मास में इन देवताओं का स्मरणकीर्तन कल्याण प्रद होता है। ये देवता अधोङ्कित हैं—

(1) विष्णु	(2) जिष्णु	(3) महाविष्णु	(4) श्री हरि
(5) कृष्ण	(6) अधोक्षज	(4) केशव	(8) माधव
(9) राम	(10) अच्युत	(11) पुरुषोत्तम	(12) गोविन्द
(13) वामन	(14) श्रीश	(15) श्रीकान्त	(16) विश्व साक्षिण
(17) नारायण	(18) मधुरिपु	(19) अनिरुद्ध	(20) त्रिविक्रम
(21) वासुदेव	(22) जगद्योनि	(23) अनन्त	(24) शेषशायिन
(25) संकर्षण	(26) प्रद्युम्न	(27) दैत्यारि	(28) विश्वतोमुख
(29) जनार्दन	(30) धरावास	(31) दामोदर	(32) अघार्दन
(33) श्रीपति।			

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय ज्योतिष जिसे वेदों की आँख के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है, अत्यन्त वैज्ञानिक एवं यथार्थ आगणन एवं फल प्रदान करने वाला शास्त्र है। इसकी काल गणना की प्रक्रिया शतशः पूर्ण सत्य का प्रतिपादन करती है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं पोषण में इस शास्त्र की महती उपादेयता एवं प्रतिभागिता है।

भारतीय जीवन दर्शन पूर्ण तथा आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर दृष्टिपात करता है। परिणामतः इस पथ का अनुगमन करने के लिए उत्सवों एवं त्योहारों के माध्यम से प्रेरित करना भारतीय संस्कृति का मूल उत्स है। विवेच्य अधिमास अथवा पुरुषोत्तम मास विषयक कारण एवं माहात्म्य यह संकेत करते हैं कि हमारे मंत्र द्रष्टा मनीषी ऋषि कल्प साक्षात् अथवा अनुभवजन्य ज्ञान के माध्यम से काल, स्थान, एवं जलवायु के अनुरूप मानव जीवनोपयोगी हितकारी सिद्धान्तों को प्रशस्त कर जीवन की मूल अवधारणा से सम्पृक्त किए हैं। इस भारत भूमि पर ही सृष्टि से लेकर आज तक परब्रह्म के सभी अवतार हुए हैं। इस धरा धाम पर भौतिक सुख एवं आनन्दानुभूति के लिए देवगण सदैव लालायित रहते हैं।

''गायन्ति देवाः किल गीतिकानि, धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे॥''

अतएव अपने ऋषियों द्वारा अनुदेशित एवं शास्त्रों में वर्णित सत्पथ का अनुसरण करते हुए हम सभी भारतीयों को सनातन धर्म एवं संस्कृति पर गर्व करना चाहिए।

रामायण मेला समिति महामंत्री प्रयाग।
'ऋचायतन'
350 बी, नयाबैरहना इलाहाबाद—211003
मो. 9919409727

क्या मेरी अगली पीढ़ी अपंग पैदा होगी?

महेश प्रसाद शुक्ल

दृश्य जगत के मानव समाज में जब निरक्षरता का बोलबाला था, शिक्षितों की संख्या मानव समाज में नाम मात्र की थी। उस समय हिन्दुस्तान का मानव समाज निरक्षर होने के उपरान्त भी यह सोचता था कि जो मेरे द्वारा किये गये परिश्रम से फल प्राप्त हो रहा है, वह पर्याप्त मात्रा में हैं। उस प्राप्त फल से अपने-व अपने परिवार की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए शेष से दूसरे की सहायता या अपने परिवार के बुजुर्ग से दान धर्म कराते हुए, सामाजिक प्राणी के भी कर्त्तव्य का निर्वहन करते हुए प्राप्त फल से संतुष्ट होकर जीवनयापन करता था। अपने कर्म से प्राप्त फल के लिए अदृश्य शक्ति, ईश्वर, परमेश्वर, परवरदिगार, गॉड की कृपा मानता था कि यह फल जो मिला है, वह उसी की कृपा से मिला है, उसको धन्यवाद देता था न कि अपने कर्म पर घमण्ड।

अशिक्षित मानव समाज की अधिसंख्य संख्या मानवता के विरूद्ध कर्म को ही पाप कर्म मानकर उस कर्म के करने से बचती थी। मानवता के कर्म में कर्मफल से प्राप्त धन का अभावग्रस्त मानव के लिए उपयोग करके अपने कर्म को पुण्य की श्रेणी वाला महसूस करके मानव समाज में आनन्द से रहता था। अभावग्रस्त मानव की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला कर्म जीवन में अपनाकर रहते थे। दूसरे मानव के धन तथा उन्हें प्राप्त होने वाले सहायता रूपी धन का अपने लिए उपयोग करने वालों की मानव संख्या बहुत कम थी तथा प्राकृतिक, स्वाभाविक, मानवतावादी कर्म करने वाले जनमानस की संख्या समाज में अधिक विद्यमान थी। इसके कारण दृश्य जगत में मानव सहित सभी जीवन खुशहाल तथा समाज में विचलित मन वाले मानव की संख्या नाम मात्र की थी। समस्याओं का अभाव था अधिसंख्य मानव समाज की सोच अन्दर व बाहर से समाज के लिए कल्याणकारी तथा सभी के लिए हितबद्ध होती थी। मानवतावादी सोच को अपने कर्म में प्रदर्शन करता था।

शिक्षित होने का दौर प्रारम्भ हुआ। काफी वर्षो तक शिक्षा, सामाजिक, ज्ञान मानवतावादी, पाप-पुण्य कर्म का अन्तर, स्वाभाविक प्रगति पर आधारित थी। जब से वर्तमान शिक्षा, जो केवल रोजी, रोटी पर आधारित है, ने सामाजिक ज्ञान की शिक्षा का स्थान ले लिया है, तभी से मानवतावादी, पाप-पुण्य कर्म, स्वाभाविक प्रगति या विकास की तरफ से आकर्षण समाप्त हुआ। फलतः वर्तमान मानव ने कर्म-अकर्म के अन्तर को भूलकर केवल धन उपार्जन तथा उसका संचय करने की वृत्ति को अपना लिया है। ऐसे शिक्षा प्राप्त, जो रोजी, रोटी पर आधारित है के मानव ही, कार्यपालिका के अधिकारी, कर्मचारी का पद शैक्षिक योग्यता के आधार पर प्राप्त कर रहे हैं।

एक ऐसा समय मानव के लिए था जब मानव कर्म करके अपने अपने परिवार सहित अभावग्रस्त मानव का भी सहयोग तथा उससे शेष धन से वृद्धों को दान-धर्म कराकर अपने को सफलतम श्रेणी का मानव मानता था। आशा व विश्वास करता था कि उसके कर्म से अदृश्य शक्ति खुश होगी तथा उसकी कृपा मेरे तथा मेरे परिवार पर बनी रहेगी समाज में अभावग्रस्त पड़ोसी मानव के परिवार में किसी आगन्तुक के आने पर उस पड़ोसी को गोपनीय रूप तथा मर्यादित ढंग से अभाव वाली सामग्रियों को देकर आगन्तुक की सेवा में सहयोग करता था। यह मानव के अविचलित मन की मानवतावादी सोच थी। मानवतावाद सुविधा सम्पन्न मानव के गुप्त सहयोग से समाज का अभावग्रस्त मानव मर्यादित ढंग से सिर उठाकर समाज में जीवन यापन करते हुए गौरवान्वित महसूस करता था। सहयोग के रूप में सामग्रियों के देने का उक्त मानव के अन्दर या बाहर से अहम नहीं झलकता था।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली से कर्म करने वाला मानव जब अपने बचत धन को किसी अभावग्रस्त मानव को देने के लिए यह सोचता है, तो सबसे पहले वह सार्वजनिक रूप से जानकारी देना चाहता हैं। वह सहयोग जो देने जा रहा है उसकी जानकारी अधिक से अधिक लोगों को हो, कि मैने अभावग्रस्त मानवों को दान या सहयोग किया है। इसमें अहम् झलकता है। पहले यही कार्य सुविधा सम्पन्न मानव द्वारा गोपनीय रूप से ख्याल रखा जाता था कि समाज के अन्य मानव को इस सहयोग की जानकारी न हो। क्योंकि मानवतावादी मानव जो दूसरे के दान सहयोग से अपने आवश्यकताओं की पूर्ति करता है वह वैसे ही अपने को छोटा समझता है। जब उस सहयोग का प्रदर्शन हो जाता है, ऐसे मे वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के बावजूद भी कुढ़न से जीता है, अर्थात सम्मान से नहीं जीता है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से शिक्षित मानव प्रतियोगिता के माध्यम से सफल होकर कार्यपालिका के अधिकारी, कर्मचारी के पदों पर नियुक्त होकर कानून व नियमों के तहत कर्म करने के लिए है, जो वेतन भोगी है। चूँकि वेतन भोगी हैं ऐसी स्थिति में उन्हें अपने या अपने परिवार की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में कोई रूकावट नहीं है। फलस्वरूप उनके सामने अपने व परिवार के पालन में कोई समस्या नहीं है ऐसी स्थिति में उनका मन भी विचलित नहीं हो सकता है। यानि वह लोग अपने अविचलित मन से अपने प्राप्त पदवद्ध कर्त्तव्य का पालन प्राकृतिक रूप से कर सकते है। परिणामतः मानव अपनी समस्या पर धैर्य के साथ रहकर जीवनयापन करेगा कि मेरी समस्या समाधान स्वाभाविक रूप से अधिकारी, कर्मचारी द्वारा अवश्य होगा।

फिर भी अधिकारी कर्मचारी जो सभी तरह से विकसित, समस्याओं से रहित तथा शिक्षित हैं, उनमें से अधिसंख्य अधिकारी कर्मचारी अदृश्य शक्ति पर अविश्वास करके भ्रमित होकर उनके भय से अज्ञानी होकर अपने वेतन के बदले स्वाभाविक कर्म नहीं कर रहे हैं, जो प्राप्त पद एवम् मानवता के कर्त्तव्यों के विरूद्ध है। दूसरी बात यह है कि कार्यपालिका के अधिकारी, कर्मचारी पदेन प्राप्त कर्त्तव्य का पालन भी नहीं कर रहे हैं, अलग से समस्या ग्रसित मानव के साथ दुर्व्यवहार जरूर कर रहे हैं। मानव समाज समस्या से ग्रसित भी है और कार्यपालिका के अधिकारी कर्मचारी के दुर्व्यवहार को भी सहन करने के लिए मजबूर है।

ऐसे अधिकारी कर्मचारी जो पदेन प्राप्त अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर रहे हैं, उन्हीं का कार्यपालिका के उच्च पदों पर बोलबाला है। वह महत्त्वपूर्ण पदों पर व्यवस्थापिका की कृपा से नियुक्त है। उनके काम न करने का मुख्य कारण है, उनका व्यवस्थापिका या व्यवस्थापिका से जुड़े किसी विशेष मानव से गहरे सम्बन्ध। उसी सम्बन्ध के कारण महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति पाने में सफल हैं, इसलिए वह जनमानस के लिए प्राप्त करने के समय को व्यवस्थापिका से सम्बन्ध बनाने में देते हैं। इसके कारण अपने जनमानस के कर्त्तव्यों के प्रति उदासीन हो जाते हैं। क्योंकि यदि जनमानस के कर्त्तव्य के प्रति जागरूक हो जाएंगे, तो व्यवस्थापिका से सम्बन्ध बनाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। फलस्वरूप वह महत्त्वपूर्ण पद पर नहीं रह पायेंगे। इसी सोच के कारण पदेन प्राप्त कर्त्तव्य को भूलकर केवल व्यवस्थापिका से सम्बन्ध बनाने में लगाते हैं। व्यवस्थापिका से सम्बन्ध जनमानस के कार्य को न करने के एवज में ही सम्भव है।

जनमानस के कार्य, समस्या का निराकरण जब कार्यपालिका के अधिकारी कर्मचारी नहीं करेंगे तभी वह मानव अपनी समस्या को न हल होने की शिकायत लेकर व्यवस्थापिका के सदस्य के यहाँ जाएगा और तत्पश्चात् व्यवस्थापिका का सदस्य सम्बन्धित अधिकारी, कर्मचारी से उक्त समस्या को अपने अनुसार निराकरण हेतु निर्देशित करके उस समस्या का निराकरण अप्राकृतिक रूप से करायेगा। जिसके एवज में व्यवस्थापिका के सदस्य तथा कार्यपालिका के अधिकारी कर्मचारी का अप्राकृतिक रूप से विकास होगा। ऐसे अप्राकृतिक विकास से व्यवस्थापिका

के उक्त सदस्य का भविष्य मे चुनाव के समय उसकी सफलता होती है। तथा अधिकारी कर्मचारी के कई पीढ़ी के जीवनयापन हेतु अप्राकृतिक रूप से धन लाभ व महत्त्वपूर्ण पदों पर अनवरत नियुक्त रहने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

शिक्षित अधिकारी कर्मचारी की वह संख्या जो अपने पद के दायित्व को पूर्ण करने के लिए स्वाभाविक कर्म नहीं कर रही है। ऐसे अधिकारी कर्मचारी ने पता नहीं सपने मे किस शक्ति से ज्ञान प्राप्त कर लिया है कि उसकी अगली कई पीढ़ी (वंश) अकमर्ण्य या अपंग पैदा होगी। इसी सपने से उनका मन विचलित श्रेणी में होकर उन्हें वेतन के एवज मे स्वाभाविक, प्राकृतिक, कानूनी रूप से कर्म करने से रोकता है। अधिसंख्य अधिकारी, कर्मचारी बेचारे इस सपने को इसलिए समाज के अन्य मानव को नहीं बताते हैं, कि समाज का बुद्धिजीवी मानव उनको पापी कहेगा। क्योंकि ऐसी स्थिति मानव द्वारा पाप कर्म करने के कारण होती है। इस सामाजिक आरोप से बचने के लिए उक्त तथाकथित सपने को अपने अन्दर गोपनीय रूप से रखकर विचलित मन से सपने के सही होने के भय से अपनी अगले कई पीढ़ी के जीवन यापन के लिए अप्राकृतिक रूप से धन संग्रह करके उसे इधर-उधर छिपाने में भी पूरे शिक्षित होने का उपयोग कर रहा है। तथा पुनः आयकर विभाग से उसी शिक्षित होने की बुद्धि से प्रकाशित होने से बच निकलता है। इस तरह अधिसंख्य अधिकारी, कर्मचारी अदृश्य शक्ति होने से बच निकलता है। इस तरह अधिसंख्य अधिकारी, कर्मचारी अदृश्य शक्ति द्वारा प्राप्त बुद्धि विवेक को पूर्णरूपेण व्यवस्थापिका के सदस्यों से अप्राकृतिक रूप से आशीर्वाद प्राप्त करने, अच्छे स्थानों पर नियुक्ति पाने, अकर्म द्वारा धन का उत्पादन करके संग्रह करने, उक्त संग्रह अवैध धन को छिपाने (बैंक आदि में) तथा आयकर से बचने आदि के रास्ते को तलाशने में ही लगा दे रहे है, न कि पदेन कार्य सम्पन्न करने में ।

अदृश्य शक्ति ने तो अपने कर्त्तव्य का निर्वहन अधिसंख्य अधिकारी, कर्मचारी द्वारा न करने पर इसलिए सपना दिखाए कि इससे उनमें सुधार होगा। फलतः अपने दायित्त्वो का निर्वाह करेंगे। लेकिन अदृश्य शक्ति को क्या मालूम कि यह शिक्षित है इनकी शिक्षा रोजी रोटी के लिए है। इनके ऊपर अदृश्य शक्ति के सुधारात्मक कर्म के लिए दिखाये गये सपने का प्रभाव नही पड़ेगा। बल्कि वह विचलित होकर उन अकर्मो को उत्साहित होकर करेगा, जिससे उनकी अगली पीढ़ी का कल्याण होने की सम्भावना है। फलस्वरूप आपके अंश मानव को घुट-घुट कर जीने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। समस्या ग्रस्त मानव को मरने भी नहीं देगा, समस्या विहीन नहीं होने देगा, क्योंकि समस्या ग्रस्त मानव यदि मर जाएगा, समस्या विहीन हो जायेगा तो व्यवस्थापिका के सदस्यों के यहाँ कौन जाएगा? उनके आवास कार्यालय की शोभा कौन बढ़ाएगा तथा अधिकारी, कर्मचारी की अगली पीढ़ी के जीवन यापन की व्यवस्था कौन करेगा? प्रतिफल होगा कि मिशन अधूरा रह जाएगा।

अरे भाई जब मानव समाज अदृश्य शक्ति का अंश है। अदृश्य शक्ति ही जगत के साथ-साथ मानव समाज का भी पिता है। सभी की मृत्यु निश्चित है। जीवों में मानव को ही अदृश्य शक्ति से हाथ प्राप्त है, बुद्धियुक्त कर्म के प्रदर्शन का गुण विद्यमान है। अपने तथा अभावग्रस्त दूसरों की भी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति कर्म द्वारा करके जीवन यापन मर्यादित ढंग से कर रहे हैं। जो अगली पीढ़ी आ रही हैं, वह भी आदृश्य शक्ति का अंश है। वही उसका पिता है। हाथ व बुद्धियुक्त कर्म के प्रदर्शन करने वाले गुण से ओत-प्रोत हैं। उसकी भी मृत्यु निश्चित है। वह भी निश्चित है कि मेरी तरह कर्म करके, अपने तथा अभावग्रस्त मानव की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करके मर्यादित जीवन यापन करेगी। तब हम उनके (अगली पीढ़ी) के लिए अकर्म या अमर्यादित कर्म करके, दूसरे को प्राप्त होने वाले स्वाभाविक धन या प्राप्त धन को जिससे वह अपने व अपने परिवार की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करके मर्यादित जीवन यापन करते, उसके छल-कपट से प्राप्त करके इकट्ठा क्यों कर रहे हैं? दूसरे के परिवार को खुशी देने वाले धन को प्राप्त करके हम अपने परिवार को खुश रख सकते हैं? नहीं।

यहाँ इस पर भी अकर्म करने वाले मानव को विचार करना चाहिए कि यदि मेरे पूर्वज भी अकर्म करके अलगी (मेरे) पीढ़ी के लिए धन का संग्रह करके छोड़ गये होते, तो क्या मैं जिस स्थान पर शिक्षित होकर प्रतियोगिता में सफलता के पश्चात् कार्यपालिका में सदस्य के रूप में नियुक्ति पायी है, नियुक्ति पाने में सफल होता? क्योंकि मेरे पूर्वज यदि धन इकट्ठा करके रखे होते, तौ मैं शिक्षित होकर प्रतियोगिता में सम्मिलित होकर नौकरी करने का प्रयास न करता। जैसा कि धनवान परिवार की पीढ़ी कर रही है, राजा का लड़का शिक्षित होकर नौकरी प्राप्त करने का प्रयास नहीं करता है, क्योंकि उसके यहाँ उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति का अभाव ही नहीं रहता है। यह केवल अपना, मानव समाज से अभिवादन ही प्राप्त करना अधिकार समझता है, न कि किसी कर्तव्य में विश्वास करता है।

ऐसी स्थिति में मानव कर्मठ, कर्मयोगी न होकर अकमर्ण्य हो जाते हैं। अकर्मण्य मानव अपंगता से भी बदतर स्थिति की श्रेणी में आता हैं । मानव समाज को भ्रमित होकर अकर्म करने से बचना चहिए, नहीं तो मानव समाज में अकर्मण्य मानव की संख्या में बढोत्तरी होगी। फलतः मानव समाज की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वाभाविक रूप से नहीं हो पायेगी।

भगवद् गीता में भगवान श्रीकृष्ण जी ने अपने विश्वसनीय मित्र अर्जुन से कहा है कि '' यह सोच कर स्वाभाविक कर्म को प्रभावित न करो कि गलत कर्म करने वाले मेरे सम्बन्धी तथा गुरू हैं। अपना स्वाभाविक कर्म करो नहीं तो तुम्हारी अगली पीढ़ी, अकर्मण्य हो जायेगी। तत्पश्चात् अगली पीढ़ी वर्ण शंकर के रूप में पैदा होगी। वर्ण शंकर मानव अवांछित मानव समुदाय है।'' जो दृश्य जगत के सामान्य मानव समाज की अपने विचलित मन से शान्ति को भंग करेगा।

विश्व विजेता की इच्छा रखने वाले सिकन्दर को भी अन्तिम विजय यात्रा के समय धन के संग्रह पर सोचने के लिए बाध्य होना पड़ा था। जब उसे अपने विजय रथ को आगे बढ़ाते हुए अन्तिम राज्य पर आक्रमण किया, तो उसने पाया कि उस राज्य का शासक अपने राज्य की सीमा पर सिकन्दर का स्वागत करने के लिए इन्तजार कर रहा है। सिकन्दर के आने पर उसने स्वागत किया और अपने महल पर सिकन्दर को सेना सहित ले गया। वहाँ पर सेना के लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था अलग थी तथा सिकन्दर की अलग। सिकन्दर के सामने जब थाल आया तो देखकर सिकन्दर ने कहा कि यह कोई खाने वाली चीज है। थाली में सोने, चाँदी जवाहरात के व्यंजन थे तब स्वागत करने वाले शासन ने सिकन्दर से कहा कि यह खाना आप नहीं खाते हैं? सिकन्दर ने कहा, नहीं। स्वागत करने वाले शासक ने तब कहा कि क्या वही रोटी दाल खाते हैं, जो हम लोग खाते हैं? उत्तर में सिकन्दर ने कहा, हाँ । तब स्वागत करने वाले शासक ने बुद्धिमानी से कहा कि जब वही रोटी दाल आप भी खाते हैं, जो हम लोग खाते हैं, तब क्या वह रोटी दाल आपको अपने मूल राज्य में नहीं मिल रही थी? क्या जरूरत विश्व विजेता बनने की थीं? इस पर विश्व विजेता बनने की सोच वाले सिकन्दर को शिक्षा मिली। उसने वापस अपने यहाँ आकर निर्देश दिया कि जब हमारी मृत्यु हो जाये, मिट्टी ले जाते समय मेरे दोनों हाथों को जनाजे से बाहर लटका दिये जाय, जिससे लोगों को ज्ञान हो जाय कि विश्व विजेता सिकन्दर खाली हाथ जा रहा है।

दृश्य जगत के जीव को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक प्रकार का जीव हाथ रहित पैदा होता है, वह जीवन भर अपने भोजन की व्यवस्था करके जीवन को समाप्त करता है। उसके पास बुद्धि है, लेकिन वह अपनी बुद्धि का प्रदर्शन करने में सक्षम नहीं है, लेकिन बुद्धि द्वारा अपनी सुरक्षा करने में सक्षम है। दूसरे प्रकार के जीव में केवल मानव जीव है, जो हाथ सहित उत्पन्न हुआ है। मानव ही अपनी बुद्धि का प्रदर्शन करके अपने व दूसरे के जीवनयापन तथा सुरक्षा करने में सक्षम हैं। प्रथम प्रकार के जीव केवल अपने लिए कर्म करके जीते हैं। वह कर्म केवल अपने

भोजन के लिए होता है। द्वितीय प्रकार का जीव मानव अपने तथा दूसरे की सभी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए बुद्धि सहित कर्म का प्रदर्शन करने में सक्षम है।

जब जीव मानव अपने तथा दूसरे की सभी आवश्यकताओं के लिए कर्म करके पूर्ति करने में सक्षम है तो अधिसंख्य मानव अपने विचलित मन से अकर्म द्वारा मानव समाज की अगली पीढ़ी भी तो अपना कर्म करके अपनी व दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेगी। ऐसा विश्वास रखना चाहिए जो प्राकृतिक रूप से विश्वसनीय है। भ्रमित होकर अपनी अगली पीढ़ी के अपंग होने का सन्देह न करें। अप्राकृतिक तरीके से धन इकट्ठा करने की सोच उसके विचलित मन की भ्रमित सोच है। इसी भ्रमित सोच ने मानव के सामाजिक प्राणी होने के तानाबाना तथा'जियो और जीने दो' की प्रवृत्ति को वर्तमान में नष्ट कर दिया है।

जिस मानव को अदृश्य शक्ति ने उसके अपने तथा दृश्य जगत के लिए उत्पन्न किया था, उसमें से वर्तमान में अधिसंख्य मानव विचलित मन के कारण 'जियो व जीने दो' के स्थान पर स्वयं अपने व सीमित परिवार तथा अगली पीढ़ी के लिए अकर्म द्वारा अव्यवस्थित विकास करके केवल आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करके नहीं जी रहे हैं, बल्कि भौतिक सुख के साथ जीने के साथ ही साथ अगली पीढ़ी के भौतिक सुख के साथ अगली पीढ़ी के भौतिक सुख जीने के लिए व्यवस्था कर रहे हैं।

मात्र मानवता के ह्रास के कारण मानव द्वारा भ्रमित होकर विचलित मन की सोच से किये जा रहे कर्म से अपनी अगली पीढ़ी मानव को अपंग होने का संदेह पर पूर्ण विश्वास करके उसके लिए धन की व्यवस्था पूर्व से करने की सोच से एक मानव का दूसरे मानव के प्रति अविश्वास पैदा हुआ है। फलतः अधिसंख्य मानव में अदृश्य शक्ति, माँ-बाप तथा वरिष्ठों पर विश्वास की कमी आई। अविश्वास ने ही भ्रष्टाचार को जन्म दिया। भ्रष्टाचार के आगमन से अविचलित मानव का विचलित मन में परिवर्तन होने पर अपराध स्वयमेव खड़ा हो गया। भ्रमित मन वालों की संख्या की बढ़ोत्तरी ही भ्रष्टाचार व अपराध के लिए उपयुक्त खाद व पानी का कार्य कर रहा हैं

वसुधैव कुटुम्बकम् प्रयागराज,
ई-मेल mpshukla94@gmail-com
मो.न. : 9454941681

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।

जिस प्रकार से प्रज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है,
उसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्नि संपूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है।

—श्रीमद्भगवद्गीता—4/37

सहस्त्रगीति का अध्ययन करते समय श्रीयामुनाचार्य जी को श्रीरामनुजाचार्य का ध्यान आना

—ज.गु.रा. स्वामी घनश्यामाचार्य

श्रीरामानुजाचार्य भगवान् वरदराज जी सेवा करते हुए काञ्चीपुरी में निवास करने लगे। श्री रामानुजाचार्य के अवतार के पूर्व ही श्रीयामुनाचार्य, जो कि भगवान् के सिंहासन के अवतार माने जाते थे, वे अपना राज सिंहासन छोड़कर श्रीरंगम् में निवास करने लगे थे। वे सभी गुणों से पूर्ण थे, वेदान्त को जाननेवाले थे, श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के संस्थापक थे। एक बार वे श्री शठकोप स्वामी जी के द्वारा गायी हुई सहस्त्रगीति का अध्ययन कर रहे थे, तब ''पोलिहा'' नाम से प्रबन्ध आया। उस प्रबन्ध मे अवतारसूचक बात थी। उसमें श्रीशठकोप स्वामी जी ने अपने प्रबन्ध में यह भविष्यवाणी गायी थी कि '' भविष्य में भविष्यद् आचार्य अवतार लेंगे और उन्होंने किसी मूर्तिकार को यह स्वप्न दिया कि—''तुम आचार्य के आकार में मेरी मूर्ति बनाकर यामुन मुनि को प्रदान करो।''

मूर्तिकार ने मूर्ति बनाकर श्रीनाथमुनि जी को दे दी। श्रीनाथमुनि जी ने उसे विग्रह को पद्मा स्वामी को दे दिया। श्रीपद्मा स्वामी ने श्रीराममिश्र जी को दिया और श्री राममिश्र जी ने श्री यामुनाचार्य जी को दिया और श्रीयामुनाचार्य जी ने श्री गोष्ठीपूर्ण स्वामी जी को दिया और उन्होंने अपनी पुत्री श्रीदेवी को दिया।

जब श्रीरामानुजाचार्य ने मंत्रार्थ ग्रहण किया तब वह मूर्ति एकाएक अदृश्य हो गई ऐसी कथा उस प्रबन्ध में थी।

श्रीयामुनाचार्य जी को तभी ऐसा अनुमान होने लगा कि—'हो-न-हो-किसी भी देश में या गाँव में श्रीरामानुजाचार्य जी का अवतार हो गया है। तब उन्होंने अपने शिष्यों को बुलाकर कहा कि—''आप लोग सभी देशों में, गाँवों में जायें और जो भगवद्-भक्त, प्रिय बोलने वाला, सभी शास्त्रों का ज्ञाता, सदाचारी हो ऐसे श्री वैष्णव लड़के का पता लगाकर हमें सूचना दें। गुरू जी की आज्ञा पाकर बहुत से शिष्य चारों दिशाओं में भ्रमण करते हुए जब श्रीकाञ्चीपुरी में पहुँचे तब उन्होंने श्रीरामानुजाचार्य को देखा और वहाँ के लोगों से पं. यादवप्रकाश की घटना, राजकुमारी से ब्रह्मराक्षस दूर करने इत्यादि बातें सुनकर उन्होंने शीघ्र ही श्रीरंगम् पहुँचकर अपने गुरू जी श्रीयामुनाचार्य से सब बातें निवेदन कर दी। यह सुनकर उनके मन में श्रीरामानुज जी को देखने की तीव्र इच्छा हुई, किन्तु रोग से पीड़ित होने के कारण जा नहीं सके।

उधर यादवप्रकाश प्रयाग जाकर पूरे माघ मास में गंगा स्नान करते हुए वहाँ रहे। एक बार गंगा स्नान करते समय गोविन्द की हथेली में शिवलिंग आ गया गोविन्द के हाथ में शिवलिंग देखकर यादवप्रकाश बोले—''गंगा स्नान के पुण्य उत्पन्न यह भगवान रूद्र हैं।''

पश्चात् अन्य तीर्थो में भ्रमण करके सब विद्यार्थियों के सहित यादवप्रकाश श्री काञ्ची लौट आये। गोविन्द तो अब अपने मंगल ग्राम मे आकर ''कालहस्तिपुर'' शिवलिंग की स्थापना करके शिव जी की भक्ति में लग गये।

इधर यादव ने सोचा कि मेरी अपकीर्ति हो रही है, इसलिए रामानुज को अपने से करने में लाभ नहीं है। तब उन्होंने रामानुज जी को बुलवाया और पुनः पढ़ने के लिए आग्रह किया। श्रीरामानुज जी ने मन में सोचा कि काशी में यादव के अतिरिक्त दूसरे कोई पंडित है नहीं। इसलिये यादव की बात मान ली और श्रीवरदाज जी की आराधना त्याग कर यादव के यहाँ पढ़ने जाने लगे।

अन्येषां पुराणागमादीनां प्रामण्यव्यवस्था

—ज.गु.रा.स्वामी श्रीधराचार्य प्रयाग

पुराणों के प्रतिपाद्य विषयासर्ग आदि पाँव हैं। पुराणों के सात्विक, राजस एवं तामस, ये तीन भेद हैं। इसमें तत्त्व के विषय में जहाँ कहीं भी विरोध है, उसे प्रामाणिक नहीं माना जाता है। उससे भिन्न पुराणों के सभी अंशों को प्रामाणिक माना जाता हैं। पाशुपत आदि आगमों के विषय में भी यही बात है। पाञ्चरात्रागम चार प्रकार के सिद्धान्तों में विभक्त हैं—आगमसिद्धान्त, दिव्यसिद्धान्त, तन्त्रसिद्धान्त एवं तन्त्रान्तरसिद्धान्त। श्री पाञ्चरात्रागम का वेदों से कही भी विरोध नहीं है, अतएव सम्पूर्ण पाञ्चारात्रागम की प्रामाणिकता स्वीकार की जाती है। इसी तरह वैखानसागम की भी पूर्णरूप से प्रामाणिकता स्वीकार की जाती है। इसी तरह से धर्मशास्त्रों की भी बात हैं। धर्मशास्त्रों के प्रणेता-शाण्डिल्य, पराशर, भरद्वाज, वसिष्ठ तथा हारीत आदि महर्षि हैं। शिल्पशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, गान्धर्वशास्त्र, नाट्यशास्त्र आदि का भी उपर्युक्त अंश में ही प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है। कर्षण आदि तथा गोपुर एवं प्राकार आदि के निर्माण की प्रतिपादिका शिल्पविद्या है। वैद्यक को आयुर्वेद कहते हैं। गान इत्यादि का निरूपण करने वाली गान्धर्वविद्या है। भरतागम (नाट्य-शास्त्र) नृत्य आदि का विधान करता है। इसके अतिरिक्त चौसठ कलारूपी शास्त्रों में उन्हीं अंशों का प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है, जो तत्त्व, हित एवं पुरूषार्थ का प्रतिपादन करते हैं।

पुराणादि के प्रामाण्य की व्यवस्था

भा.प्र.—पुराणों के विषयों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि पुराणों के सर्ग आदि पाँच विषय हैं। तथाहि—

'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च, वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

पुराणों मे निम्न पाँच वर्ण्य हैं—1-सर्ग—सृष्टि,2. प्रतिसर्ग-प्रलय।, 3. वंश-विभिन्न वंशों का वर्णन।, 4. मन्वन्तरों का वर्णन तथा 5. विभिन्न वंशों के चरितों का वर्णन।

पुराणों की संख्या अठारह है। इन अठारह पुराणों को तीन भागों में विभक्त किया जाता है—सात्विक, राजस एवं तामस। कहा भी गया है—

'वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारूडं च तथा पाद्यं वाराहं शुभदर्शने॥
षडेतानि पुराणानि सात्त्विकानि मतानि मे।
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तम् मार्कण्डेयं तथैव च॥
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे।
मात्स्यं कौर्म तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च।
अग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध में॥

अर्थात् 'हे मनोहारिणी पार्वती। विष्णुपुराण, नारदपुराण, तथा कल्याणकारी भागवत् (श्रीमद्भागवत) पुराण, गरूडपुराण तथा वाराहपुराण, ये छह पुराण मुझे सात्त्विक रूप से अभिमत हैं। ब्रह्माण्ड ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्यत्, वामन तथा ब्राह्म, इन छह पुराणों को राजस जानो। मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द तथा अग्नि, इन छः पुराणों को तामस पुराण जानों। इन सभी पुराणों का आपस में तत्त्व के विषय में कोई भी विरोध नहीं है। अतएव इन सभी पुराणों का आपस में तत्त्व के विषय में ही प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है। विरोधस्थल में प्रामाण्य नहीं स्वीकारा जाता है। इसी तरह पाशुपत आदि आगमों को भी जहाँ वेदानुकूल तत्त्वांश के विरोध है, वहीं उनका प्रामाण्य नहीं स्वीकार किया जाता है। अन्यत्र उनका सर्वत्र प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है। पाञ्चरात्र शास्त्र के प्रवक्ता भगवान् श्रीमन्नारायण को माना जाता है। प्राचीनकाल में श्रीभगवान् ने अपने पञ्चायुध के अंश से समुद्भूत औपगायन, शाडिल्य, भरद्वाज, कौशिक तथा मौञ्जायन महर्षियों को पृथक्-पृथक् एक-एक रात्रियों में लोक की रक्षा, संसारी जीवों का उद्धार, सद्धर्म तथा स्वाराधन के प्रवर्तन हेतु, मोक्षप्रद, आद्यवेद एकायन शाखा नामक रहस्याम्नाय को पढ़ाया, इसीलिए उसे श्रीपाञ्चरात्रागम के नाम से अभिहित किया जाता है। इसका दूसरा नाम भगवच्छास्त्र भी है। पाञ्चरात का कहीं भी वेदों से तत्त्व के विषय में विरोध नहीं है, अतएव सम्पूर्ण पाञ्चरात्र का प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है। पाञ्चरात्र मे चार सिद्धान्तों का वर्णन है—आगमसिद्धान्त का वर्णन है— आगमसिद्धान्त, दिव्यसिद्धान्त , तन्त्रसिद्धान्त वं तन्त्रान्तरसिद्धान्त। दिव्यसिद्धान्त को ही मन्त्रसिद्धान्त भी कहा जाता है। श्रीपाञ्चरात्र की एक सौ आठ संहिताएँ कहीं गयी है।

मन्त्रसिद्धान्त अथवा दिव्यसिद्धान्त एक मूर्तिप्रधान है अर्थात् श्रीभगवन् के पररूप का प्रधान रूप से प्रतिपादन करता है। आगमसिद्धान्त चतुर्मूर्तिप्रधान है। अर्थात् श्रीभगवान् की वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध, इन चार मूर्तियों का वर्णन करता है। तत्रसिद्धान्त नवमूर्तिप्रधान है तथा तन्त्रान्तरसिद्धान्त भगवान् की तीन-चार मुखोंवाली मूर्तियों की आराधना का प्रधान रूप से प्रतिपादन करता है। इस तरह सम्पूर्ण पाञ्चरात्रागम का प्रामाण्य सिद्धान्त में स्वीकार किया जाता है।

श्रीभगवान् के अवतारभूत महर्षि वैखानसि ने वैखानसागम का प्रणयन किया। इसमें श्रीभगवान् की आराधना का प्रकार, उनकी प्रतिष्ठा तथा महोत्सव आदि का विस्तृत वर्णन है। अतएव इस विषय में वैखानसागम का भी प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार धर्मशास्त्रों का भी वही प्रामाण्य नहीं स्वीकारा जाता, जहाँ उनका वेदों से तत्त्व के विषय में विरोध है। धर्मशास्त्रों के प्रणेताओं में प्रख्यात कुछ निम्न महर्षि है—शाण्डिल्य, पराशर, भरद्वाज, वसिष्ठ तथा हारीत आदि। इसी तरह शिल्प, आयुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा चौसठ कलाओं का भी उपर्युक्त अंश में हम प्रामाण्य स्वीकार करते हैं।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होता है। **—श्रीमद्भगवद्गीता—4/39**

मानस की मन्दोदरी

रामदेव प्रसाद सोनी 'मानस मधुकर'

सनातन संस्कृति व विश्व धर्म साहित्य में प्रभाकर की भाँति सद्भाव व सद्विचारों का संचार करने वाला विश्व का अप्रतिम ग्रन्थ है श्री राम चरित मानस। मानस संसार के मनुष्यों को जीने का सलीका व सम्बन्धों में व्यवहार की मर्यादा का पाठ भी पढ़ाता है। सीधे सरल शब्दों में यदि कहें तो श्री रामचरित मानस मनुष्य के जीवन की ऐसी आचरण संहिता है जिसका अध्ययन, मनन, अनुश्रवण व अनुशीलन तथा उसके बताये मार्ग पर चलकर व्यक्ति अपना इहलोक और परलोक दोनों संभाल सकता है। कलयुग में धन-सम्पत्ति प्राप्त करने का साधन भी राम कथा ही है **''जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना विधि पावहिं।।''** और जो भव सागर से पार जाना चाहते हैं उनके लिए भी राम कथा ही साधन है। **''भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा।।''** इसलिए भगवान की कथा व भक्ति में ही लोक व परलोक दोनों में सुख की प्राप्ति संभव है। भगवान स्वयं कहते हैं :—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुख दाई।।
जौ परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई।।

(मानस-7/43/1 व 44/1-2)

रावण परम विद्वान व भगवान शिव का परम भक्त था, परन्तु अति अहंकारी होने के कारण वह अस्थिर चित्त व अति आत्म विश्वासी भी था। उसने यह जानते हुए भी कि श्री राम ब्रह्म हैं। अन्यथा खर, दूषण को कोई और नहीं मार सकता था, राम से बैर कियाः—

खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता।।
सुर रंजन भंजन महि मारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तौर मैं जाई बैरू दृढ़ि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ।।
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ ऐहा।।

(मानस-3/22/2-5)

इस प्रकार रावण ने जान बूझकर भगवान से विरोध और बैर किया, परन्तु उसे राम से मैत्री करने, रामजी से बैर न करने, सीता जी को सकुशल वापस करने के लिए श्री राम चरित मानस में कई पात्रों से समझाया, जिनका विस्तार से अध्ययन आप लेखक के ही ग्रन्थ ''क्यों सुन्दर है सुन्दर काण्ड'' में कर सकते हैं।

श्री राम से युद्ध न करने के लिए रावण को श्री राम चरित मानस में 13 पात्रों मारीच, जटायू, सीता जी, हनुमान जी, मन्दोदरी, विभीषण, माल्यवंत लक्ष्मण जी, शुक्र, प्रहस्त, अंगद, कालनेमि व कुंभकर्ण ने समझाया, परन्तु इन पात्रों में रावण को सर्वाधिक बार समझाने वाली रावण की पत्नी मंदोदरी है। मन्दोदरी ने रावण को राम चरित मानस में 04 बार समझाया कि आप राम से युद्ध न करें। सीता जी को स-सम्मान लौटा दें। परन्तु रावण ने किसी की भी नहीं सुना। मन्दोदरी ने रावण को जिन-जिन स्थलों पर समझाया उसे भी संक्षेप में देखते चलें :—

1. सुन्दर काण्ड में एक बार—

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मय तनयाँ कहि नीति बुझावा॥

(मानस-5/9/7)

2. लंकाकाण्ड में तीन बार—

(i) **'मंदोदरी सुन्यो प्रभु आयो'** से दोहा सं. 7 तक **'अचल होइ अहिबात॥'**

(मानस-6/5/2 से 6-7 तक देखें)

(ii) **'सजल नयन कह जुग कर जोरी'** से **'सहज असंक लंकपति सभाँ गयउ मद अंध॥'** तक।

(मानस-6/13 ख/6 से 6/16 ख तक देखें)

(iii) **सांझ जानि दसकंधर भवन गयउ बिलखाइ।**
मंदोदरी रावनहिं बहुरि कहा समुझाइ॥ (मानस-6/35 ख)

इस प्रकार मानस में मंदोदरी ने रावण को 04 बार राम से युद्ध का बखान भी किया, परन्तु अहंकार व मोह के वशीभूत रावण ने भावीवश मन्दोदरी ही नहीं किसी की बात को भी नहीं सुना। मानस के जिन पात्रों ने भी रावण को राम से बैर न करने की सलाह दिया वे किसी न किसी रूप में भी राम के प्रभाव व प्रताप से परिचित थे। चाहे व्यक्तिगत तौर पर या किसी अन्य श्रोत से, जिसकी चर्चा हम एक-एक कर विस्तार के भय से यहाँ नहीं कर सकते, परन्तु मन्दोदरी ने सर्वाधिक 04 बार रावण को क्यों समझाया, वह राम के ब्रह्म-तत्व को कैसे जानती थी? यह एक सहज जिज्ञासा का विषय है। मन्दोदरी कौन थी यह रावण को कैसे मिली? इसकी उत्पत्ति कैसे हुयी? इसकी अनेकों कथाएँ विभिन्न धर्म ग्रन्थों में अलग-अलग वर्णित है। कहीं वह पंच कन्याओं में एक हैः—

द्रुपदि अहिल्या कुन्ती तारा मन्दोदरी धन्या।
आर्य जगत की परम पावनी पावन ये पाँचों कन्या॥

(कल्याण से)

और कहीं वह मय दानव की पुत्री है। मानस के अनुसार—

मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा॥
सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी॥

(मानस-1/177/23)

इसी प्रकार मंदोदरी की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न कथाएँ पुराणों में प्राप्त होती हैं, जिनमें से कुछ का उल्लेख मैंने अपने ग्रन्थ ''मानस-पात्रांजलि'' में किया है। उपलब्ध कथाओं में से मंदोदरी की उत्पत्ति की एक विचित्र कथा संत एकनाथ कृत भावार्थ रामायण के सुन्दर काण्ड में प्राप्त होती है, जिससे मंदोदरी के राम भक्त होने व राम रहस्यों की जानकारी उसको कैसे हुयी इस तथ्य की पुष्टि होती है। कथा का संक्षेप इस प्रकार है कि—

रावण की माता कैकसी परम शिव भक्त थी और नित्य पाँच अनाजों को पीसकर उससे पंचमुखी शिव लिंग बनाकर नित्य पूजा करती थी। एक शिवरात्रि को कैकसी समुद्र के तट पर शिवलिंग बनाकर विधिवत पूजा कर रही थी कि उसने शिव जी का स्मरण कर ध्यान लगाया। कैकसी के ध्यानस्थ होते ही राक्षस द्रोही इन्द्र ने वह शिव लिंग समुद्र में डाल दिया। नेत्र खोलने पर जब कैकसी को शिव लिंग नहीं मिला तो वह जोर जोर से विलाप कर रोने लगी। माता का विलाप सुनकर रावण वहाँ आया। माता कैकसी शिवलिंग के वियोग में प्राण त्यागने को तत्पर थीं। रावण

ने उन्हें बहुत समझाया और शिव जी के पास जाकर शिवलिंग वापस प्राप्त कर लैटाने की बात कही। इस पर कैकसी ने रावण से कहा कि वह शिव से आत्म-लिंग लाकर उन्हें दे। रावण को अपनी शिव भक्ति पर परम विश्वास था, अतः वह शिव जी से आत्मलिंग की प्राप्ति के लिए कैलाश पहुँचा। परन्तु शिव जी ने रावण को न कोई महत्त्व दिया न ही आने का कारण पूछा। तब रावण ने अपना मस्तक काटकर उसमें शरीर की शिराएँ लगाकर उससे बाजा तैयार किया और बजा कर शिव को रिझाने लगा। शिव तो आशुतोष हैं, प्रसन्न हो गये और रावण से वर मांगने को कहा, परन्तु सिर न होने के कारण वह मांग नहीं सका। अतः शिव जी ने स्वयं प्रसन्न होकर उसे दश सिर प्रदान कर दिया। भगवान शिव के वर प्रभाव से रावण के दस सिर और बीस भुजाएँ हो गयीं। अब शिव ने रावण से पुनः वर माँगने को कहा। चूँकि कैलाश पहुँचते ही रावण प्रथम दृष्टि में ही पार्वती जी पर मोहित हो चुका था, अतः उसने भगवान शिव से पार्वती जी व आत्मलिंग वर के रूप में मांगा। शिव जी वचन बद्ध थे अतः उन्होंने रावण को पार्वती दे दी और आत्मलिंग देते हुए कहा कि यदि तुमने इसे भूमि पर रख दिया तो यह फिर से तुम्हें प्राप्त नहीं होगा।

रावण पार्वती जी और आत्मलिंग दोनों लेकर लंका की ओर चला। तब पार्वतीजी ने अपनी रक्षा की गुहार भगवान विष्णु से लगायी। भगवान विष्णु दौड़े-दौड़े आये, उनकी भेंट गणेश व कार्तिकेय जी से हुयी। दोनों ने एक दूसरे को सम्पूर्ण वृतान्त सुनाया। सबने मिलकर एक योजना बनाई। गणेश जी ब्राह्मणों के गायों की रखवाली करने वाले गोपाल बन गये। विष्णु जी एक ऋषि और कार्तिकेय जी उनके शिष्य बने और दोनों रावण के मार्ग में रावण के सामने पहुँचे। रावण ने भगवान शिव द्वारा दिए गये आत्मलिंग व पार्वती जी के बारे में ऋषि रूपधारी विष्णु को बताया। तब शिष्य रूप धारी कार्तिकेय जी ने रावण से कहा कि शिव द्वारा दिया गया आत्मलिंग तो असली है परन्तु पार्वती नकली हैं। शिव पार्वती को किसी को दे ही नहीं सकते। रावण! तुमको शिव जी ने ठग लिया।

कार्तिकेय जी के ऐसा कहने पर जब रावण ने पार्वती जी की ओर देखा तो वे अत्यन्त घिनौने रूप में रावण को दिखीं। ऋषि रूपी विष्णु जी ने रावण से कहा कि अपनी पत्नी पार्वती को शिव ने छिपा दिया है, मैं तुम्हें उपाय बताता हूँ, तुम जाकर शिव के आसन के नीचे विद्यमान पार्वती को मांग कर लाओ। भगवान विष्णु वागीश हैं रावण को अपनी बातों में फंसाकर पुनः शिव के पास भेज दिया। रावण आवेश में शिव के कैलाश की ओर भागा। इधर भगवान विष्णु ने अपने उदर पर लक्ष्मी जी द्वारा लगाये गये केसर व चन्दन के उबटन को निकालकर उस मैल से एक सुन्दर स्त्री का निर्माण किया। यही मंदोदरी हुयी। श्री विष्णु के 'उदर' पर के उबटन एवं चन्दर की सुगन्धि से निर्मित, विष्णु के मध्यांग से जन्मी स्त्री होने के कारण उसका नाम मन्दोदरी पड़ा श्री विष्णु ने मंदोदरी का निर्माण कर अत्यन्त कौशल पूर्वक उसे शिव के आसन के नीचे स्थापित कर दिया।

रावण आक्रोश में शिव के पास पहुँचा और असली पार्वती शिव को कटु शब्द कहते हुए लौटा दिया और शिव जी से आसन के नीचे स्थापित मन्दोदरी को असली पार्वती समझ कर ले आया। भगवान लीलाधर, सर्वत्र, महेश्वर शिव हैं अतः वे सहज ही पार्वती जी व भगवान विष्णु द्वारा किए गये रहस्य को जान गये और रावण को आसन के नीचे स्थापित मंदोदरी प्रदान कर दिया। रावण उन्हें पार्वती समझकर ले आया।

हाथों में आत्मलिंग व कंधे पर पार्वती जी को बिठाकर रावण आगे बढ़ा तो मार्ग में भगवान विष्णु की इच्छा से रावण को जोर की लघुशंका लग गयी। हड़बड़ी और लघुशंका के वेग के कारण रावण गाय चरा रहे गणेश रूपी गोपाल को आत्मलिंग थमा कर लघुशंका को चला गया। गणेश जी द्वारा बार-बार बुलाने पर भी जब रावण लघुशंका से निवृत्त होकर नहीं लौटा तो गणेश जी ने वह आत्मलिंग भूमि पर रख दिया और गायों को लेकर चलता बने। लघुशंका से निवृत्त और शुद्ध होकर जब रावण लौटा तो उसने आत्मलिंग उठाने का लाख प्रयास किया परन्तु कैलाश

पर्वत को उठाने वाले रावण से वह आत्मलिंग तिल मात्र हिला तक नहीं और वहीं स्थापित हो गया जो आज गोकर्ण महाबलेश्वर नाम से विख्यात है।

इस प्रकार भावार्थ रामायण, सुन्दर काण्ड के अनुसार मंदोदरी विष्णु संभूता अथवा विष्णु जी द्वारा निर्मित थी। विष्णु अंश से निर्मित होने के कारण ही मंदोदरी, का राम तत्त्व का पर्याप्त ज्ञान था और वह बराबर रावण को राम से बैर न करने के लिए समझाती है और रावण के समक्ष राम के विराट व विष्णु स्वरूप को उद्घाटित भी करती है, वह कहती है :—

विस्व रूप रघुबंस मनि करहु बचन विस्वासु।
लोक कल्पना बेदकर अंग अंग प्रति जासु।।
पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा।।
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच धन माला।
जासु घ्रान अश्विनी कुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा।।
श्रवन दिसा दस वेद वखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी।।
अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला।।
आनन अनल अंबुपति तीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा।।
रोम रात्रि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा।।
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना।।
अहंकार सिव बुद्धि अत मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान।।

(मानस-6/140 व 14/1-8 व दो. 15, ख)

इस प्रकार मानस की मन्दोदरी ने भगवान श्री राम के स्वरूप की जो व्याख्या, जो वर्णन मानस में किया गया वैसा किसी भी स्थल पर दृष्टि गोचर नहीं होता। पंच कन्याओं में होने के नाते मंदोदरी नित्य स्मरणीय भी हैः—

अहल्या द्रोपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पंच कन्याः स्मरेन्नित्यं महापातक नाशनम्।।

(ब्रह्माण्ड पुराण-3/7/219)

अतः मानस की मन्दोदरी न केवल पति व्रता है अपितु वह राम भक्त, राम तत्त्व दर्शी भी है तथा नित्य वन्दनीया भी है। इसके उत्पन्न होने की कथाएँ अलग-अलग ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न रूपों में मिलती हैं, जिन्हें कल्प भेद से स्वीकारा जा सकता है। क्योंकि 'कलप भेद हरि चरित सुहाए।'' अतः किसी भी कथा में आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

—सिया वर रामचन्द्र की जय

श्री राम कथा-वाचक

प्रयागराज

रामचरितमानस में अहंकार का नाशक रामकथा

डॉ. अरुण कुमार त्रिपाठी

भारतीय संस्कृति अहिंसा, सत्य, परोपकार, अपरिग्रह आदि जीवन मूल्यों पर आधारित है। भारतीय संस्कृति की जड़ें इतनी मजबूत हैं कि मुगल काल में भी गोस्वामी तुलसीदास अपने इन्हीं मूल्यों के साथ राम को अपना नायक बनाकर युगादर्श एवं धर्म के साक्षात् विग्रह के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। राम तुलसी के लिए एक ईश्वर के अवतार ही नहीं, अपितु एक मूल्यबोध भी हैं। तुलसीदास जी ने रामकथा में सामान्य मानवता के लिए अहंकार को सबसे बड़ा शत्रु बताया हैं अहं के रहते ईश्वर की शरणागति संभव नहीं है। इसलिए भक्तिमार्ग में प्रथम अवरोध अहंकार है।

रामचरित मानस में प्रभु श्री राम ने अपने भक्तों से प्रारम्भ करके राक्षस राज रावण तक के अहंकार का मान-मर्दन किया है। बालकाण्ड में अपने परमभक्त नारद किष्किन्धा में बालि का तथा उत्तरकाण्ड में कागभुसुण्डि के अहंकार का नाश तुलसीदास के राम ने किया है। रामकथा से प्रतीत होता है कि इसमें अहंकार का ही मर्दन किया गया है। रामकथा के नायक राम को अहंकार छू भी नहीं सकता वहीं रावण अहंकार का मूर्त है।

रामचरितमानस के बालकाण्ड में नारद के अहंकार मर्दन की कथा का वर्णन प्राप्त होता है। एक सद्मार्गी, भगवत भक्ति में लीन व्यक्ति को किस प्रकार अहंकार हो जाता है, इसका वर्णन इस कथा में किया गया है। नारद मुनि की भक्ति एवं तपस्या से जन-जन अवगत हैं। वे हर क्षण नारायण नाम का संकीर्तन करते हुए विचरत रहते हैं। राम के अवतार का एक कारण बताते हुए तुलसीदास ने लिखा है—

नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा।।

—रामचरितमानस 1/123/3

श्राप देने का कारण भगवान् के द्वारा नारद के अहंकार का मर्दन ही था। तप के द्वारा नारद मुनि ने काम और क्रोध दोनों पर विजय प्राप्त कर लिया था। यह वृत्तान्त नारद जी ने शिव जी को सुनाया था। शिव जी ने कहा कि ठीक है परन्तु उन्होंने नारद जी से कहा था कि हमें तो सुना दिये परन्तु विष्णु जी को मत सुनाना। परन्तु काम को जीत लेने के अहंकार में शिव का वचन भूल कर नारद जी ने विष्णु जी से भी यह कथा बताया। प्रभु नारद जी का अहंकार बढ़ाने के लिए कहे कि—

तुम्हरे सुमिरन ते मिटहिं मोह मार मद मान।।

—रामचरितमानस, बालकाण्ड-128

भगवान् ने कहा हे मुनिराज! आप के स्मरण मात्र से दूसरों के मोह, काम, मद और अहंकार मिट जाते हैं। फिर आप के लिए तो सोचना भी नहीं चाहिये। आगे भगवान् ने कहा—

सुनि मुनि मोह होई मन ताके। ग्यान विराग हृदय नहिं जाके।
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुम्हहिं कि करइ मनोभव पीरा।।

—रा.च.मा. बालकाण्ड 128/1

अर्थात् मोह तो उनको होता है जिसके मन में ज्ञान, वैराग्य नहीं है। आप तो ब्रह्मचर्यब्रत में तत्पर और बड़े धीर बुद्धि हैं। भला कहीं आप को भी कामदेव सता सकता है? अपनी प्रशंसा इस प्रकार से सुनकर नारदमुनि ने अहंकार के साथ भगवान् से कहा कि—

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवान।।

—रामचरितमानस, बालकाण्ड 128/2

कृपानिधान भगवान ने नारद मुनि की गर्वमयी वाणी को सुनकर मन में विचार करके देखा कि मुनि ने मन में गर्व के भारी वृक्ष का अंकुर पैदा हो गया है। तथा भगवान ने मुनि के कल्याण के लिए अहंकार के उस अंकुर को उखाड़ फेकने का निश्चय किया।

नारद मुनि के चले जाने पर भगवान् ने माया से एक अत्यन्त सुन्दर नगर का निर्माण किया। इस नगर का राजा शीलनिधि था। उसकी एकमात्र कन्या का स्वयंवर हो रहा था। मुनि उस नगरी में प्रवेश किये तब लोग उन्हें राजा के दरबार में ले गये। राजा ने मुनि का चरण धोकर आसन पर बैठाया। इसके पश्चात् राजन् ने मुनि की स्तुति करके अपनी पुत्री को उनके सन्मुख लेकर कहा कि मुनिवर इसके गुण-दोषों का वर्णन करिये। नारद मुनि शीलनिधि की कन्या को देखकर वैराग्य भूल गये और बड़ी देर तक उसे निहारते रहे—

देखि रूप मुनि बिरति विसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी।।
लच्छन तासु विलोकि भुलाने। हृदय हरष नहिं प्रगट बखाने।।

—रामचरितमानस, बालकाण्ड 130/1

वह कन्या सुन्दर तो थी ही साथ ही उसके लक्षण देखकर अधिक प्रभावित हुये। कन्या की विशेषता थी कि जो उसके साथ विवाह करेगा अमर हो जायेगा—

जो एहि बरइ अमर सोई होई। समर भूमि तेहि जीत न कोई।।
सेवहिं सकल चराचर ताहीं। बरइ सीलनिधि कन्या जाही।।

—रामचरितमानस, बालकाण्ड 130/2

इतनी सुन्दर कन्या से, जो विवाह कर लेगा वह अमर हो जायेगा तथा युद्ध में उससे कोई जीत नहीं पायेगा। इन लक्षणों पर विचार करके मुनि इस कन्या से विवाह का उपाय सोचने लगें।

नारदमुनि ने भगवान का अनेक प्रकार से स्तुति करके प्रसन्न किया, तब भगवान् प्रकट हुये। मुनि प्रसन्न होकर, भगवान् से कहे कि हे प्रभु! आप अपना रूप मुझे दे दीजिए—

आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहिं पावौं ओही।।

इसके बाद नारद जी ने कहा कि हे प्रभु वही करियेगा जिससे मेरा हित हो। इस प्रकार नारद का हित सोचकर भगवान ने उन्हें 'हरि' अर्थात् बन्दर का रूप दे दिया। बन्दर का रूप देखकर लोग उनका मजाक उड़ाने लगे तथा कन्या ने इसके तरफ एक बार भी नहीं देखा। इसके पश्चात् शिव के गणों के कहने पर नारद ने अपना मुख जल में देखा तब अत्यन्त क्रोध से भगवान् विष्णु को श्राप दिया—

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी।।
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी।।

—रामचरितमानस बालकाण्ड 136/4

इस प्रकार काम के वेग में नारद मुनि सब कुछ भूल गये। जो व्यक्ति काम को जीत लेने का अभिमान कर रहा था, वही व्यक्ति इस समय काम से इतना विहवल हो गया कि उसे किसी बात की सुध ही नहीं रही। इसके बाद भगवान् ने अपने माया का प्रभाव हटाया और नारद को अपने भूल का एहसास हुआ। वे भगवान् के चरणों में गिरकर कहने लगे कि मेरा पाप कैसे मिटेगा? तब प्रभु ने उसी शिव के नाम जप को कहा जिनसे नारद को ईर्ष्या हुई थी—

जपहु जाई शंकर सत नामा।

इस प्रकार भगवान् ने नारद के अहंकार का मर्दन किया।

बालि को अपने बल और पराक्रम का बड़ा अभिमान था। राचरित मानस के किष्किन्धाकाण्ड में राम ने इनके भी अहंकार का मर्दन किया और उसे स्वयं ही मृत्यु दण्ड दिया। बालि के पूछने पर कि आप तो धर्म की स्थापना के लिये पैदा हुये हैं लेकिन हमें छल से क्यों मारा। तब प्रभु राम ने कहा—

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।।
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना।।
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी।।

—रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड 8/4-5

अर्थात् श्री राम जी ने बालि से कहा हे मूर्ख! सुन छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने से कोई पाप नहीं होता। हे मूर्ख! तुम्हें अत्यधिक अभिमान था तुमने सुग्रीव को मुझ पर आश्रित जानकर भी उसे मारना चाहा। इस प्रकार राम ने बालि के अहंकार का मर्दन किया।

किष्किन्धाकाण्ड में ही सीता जी का खोज करते हुए जब हनुमान, जामवंत, अंगद आदि समुद्रतट पर पहुँचते हैं तब वहाँ सम्पाती नामक गीध, मिलता है। सम्पाती भी अपने अहंकार की कथा इन लोगों को सुनाता है। वह कहता है कि हे वीर वानरों! सुनो, हम दोनों भाई (वह और जटायू) उठती जवानी में एक बार आकाश में उड़कर सूर्य के निकट चले गये। जटायू सूर्य का तेज नहीं सह सका और लौट आया। परन्तु मैं अभिमान के वस सूर्य के निकट चला गया। परिणामस्वरूप अत्यन्त अपार तेज से मेरे पंख जल गये। मैं बड़े जोर से चीख मारकर जमीन पर गिर पड़ा—

हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई।।
तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमान रबि निअरावा।।
जरे पंख अति तेज अपारा। परेऊँ भूमि करि घोर चिकारा।।

वहाँ पर चन्द्रमा नामक एक मुनि ने सम्पाती पर दया करके अनेक प्रकार का ज्ञान प्रदान करके उसके अहंकार को दूर किया। तथा सम्पाती से कहा कि त्रेतायुग में जब भगवान् अवतार लेंगे उसी समय उनकी पत्नी को ढूँढ़ते हुए प्रभू के दूतों के दर्शन से तुम्हारे पर उग जायेंगे।

अहंकार मर्दन की इन कथाओं का वर्णन मूल कथा के अन्दर ही गोस्वामी तुलसीदास ने करके मनुष्य को उसके प्रबलतम शत्रु अहंकार से दूर रहने का उपदेश देते रहे हैं।

किष्किन्धाकाण्ड में ही जहाँ एक तरफ बाली और सम्पाती के अहंकार का वर्णन किया गया है, वहीं दूसरी ओर हनुमान जी को इतना बल होते हुए भी अपने बल का अहंकार नहीं है। परन्तु जाम्बवन्त के याद दिलाने पर उन्हें अपने बल का अहंकार नहीं होता परन्तु जब राम के कार्य का याद दिलाया जाता है तब वे प्रभु के कार्य के लिए पर्वत के समान बड़े हो जाते हैं—

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होत तात तुम्ह पाहीं।।
राम काज लगि तव अवतारा। तुरतहि भयउ पर्बताकारा।।

—रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड 29/3

भक्त हनुमान अपने भगवान के हर कार्य के लिए सदैव तैयार रहते हैं। इसीलिए उन्होंने सुरसा, लंकिनी, अक्षयकुमार सहित रावण के भी अहंकार का मर्दन किया।

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में कागभुसुण्डि के अभिमान का वर्णन प्राप्त होता है। कलिकाल में बहुत वर्षों तक अयोध्या में रहकर अकाल पड़ने पर दीन, दुःखी, दरिद्र होकर भुसुण्डी जी उज्जैन चले गये। वहाँ कुछ सम्पत्ति अर्जित हो जाने पर वहीं भगवान शिव की आराधना करने लगे वहीं एक ब्राह्मण वेदविधि से शिव की पूजा करते थे। वे शिव के उपासक थे परन्तु श्री हरि की निन्दा नहीं करते थे। उन ब्राह्मण ने भुसुण्डी जी को शिव जी का मन्त्र दिया। वे शिव जी के मन्दिर में जाकर मन्त्र जप करते। उनके मन में दम्भ और अहंकार बढ़ गया—

जपऊँ मंत्र सिव मंदिर जाई। हृदय दंभ अहमिति अधिकाई।।

—उत्तरकाण्ड 104/4

कागभुसुण्डी जी शिव की स्तुति तो करते थे परन्तु हरि भक्तों और हरि से द्रोह करते थे।

हरिजन द्विज देखें जरऊँ करऊँ विष्नु कर द्रोह।

यद्यपि गुरू जी कागभुसुण्डी के आचरण से दुःखी थे और नित्य उनको भलीभाँति समझाते थे, इससे कागभुसुण्डी जी को क्रोध हो जाता था। परन्तु अहंकार का कार्य ही है क्रोध पैदा करना। गुरू जी ने शिव जी को हरि का सेवक कहा। यह सुनकर पक्षी राज को अधिक क्रोध जाता था—

हर कहुँ हरि सेवक गुरू कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊँ।।
अधम जाति मैं विद्या पाएँ। भयऊँ जथा अहि दूध पिआएँ।।

—उत्तरकाण्ड105/3

इतना ही नहीं गुरू के उपदेश कर्ण प्रिय न होने के कारण कागभुसुण्डी जी ने गुरू से ही द्रोह करना प्रारम्भ कर दिया—

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुर कर द्रोह करऊँ दिनु राती।।
अति दयाल गुरू स्वल्पन क्रोधा। पुनि-पुनि मोहि सिखाव सुबोधा।।

—उत्तरकाण्ड 105/4

अहंकार के वस शिष्य ने गुरू पर तो द्रोह किया। परन्तु गुरू इतने दयालु थे कि उनको तनिक भी क्रोध नहीं आता था। और वे कागभुसुण्डी जी को बार-बार उत्तम ज्ञान की शिक्षा देते थे। अहंकार बढ़ता जा रहा था। एक दिन अभिमान के कारण कागभुसुण्डी जी ने गुरू का अपमान कर दिया—

एक बार हर मन्दिर जपत रहेऊँ सिव नाम।
गुरू आयउ अभिमान ते उठि नहिं कीन्ह प्रनाम।।

—उत्तरकाण्ड 190

इस अपमान का गुरू पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु गुरू का अपमान बहुत बड़ा पाप है। इसलिए महादेव उसे सह नहीं सके और उसे श्राप दे दिया—

बैठि रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति व्यापी।

इस तरह से अहंकार इतना बढ़ा कि जिसकी वह स्तुति करता था, उन्होंने ही उसे शाप दे दिया। क्योंकि ईश्वर चाहे उसका भक्त हो या न हो सभी को बुराइयों से दूर रखते हैं। इसीलिए प्रभुराम ने भी रावण के इतने पापों को भी क्षमा करने को कहकर अंगद को दूत बनाकर भेजा था। परन्तु रावण के अहंकार ने उसे यह सुझाव मानने नहीं दिया। परिणामस्वरूप कुल सहित नाश हो गया।

गोस्वामी तुलसीदास जी भक्ति मार्ग के कवि थे। इसीलिए उन्होंने रामचरित मानस में भक्ति मार्ग के सबसे बड़े अवरोधक तत्त्व अहंकार के दुष्परिणाम के प्रति मानव को सावधान करते हुए यह संदेश दिया है कि अहंकार के नाश होने पर ही मानवीय करुणा, दया, समता, और समरसता का भाव आता है। इसलिए सर्वप्रथम अहंकार का विनाश होना आवश्यक है।

48/18 HIG योजना-2
झूँसी, प्रयागराज-211019
मो. 9918456889